ISSN NUMBER : 2455-9717
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

# शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 2, अंक : 5
अप्रैल-जून 2017
मूल्य : 50 रुपये

# ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा संचालित आर्थिक रुप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं हेतु निःशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना (सीहोर चैप्टर, तीसरा वर्ष)

## बालिकाओं को पाठ्य सामग्री तथा कम्प्यूटर डिप्लोमा प्रदान करने हेतु आयोजित कार्यक्रम




# ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा संचालित आर्थिक रुप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं हेतु निःशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना (आष्टा चैप्टर, प्रथम वर्ष)

# समाचार पत्रों में कवरेज

ढींगरा फैमिली फाउंडेशन अमेरिका ने बालिकाओं को दिए डिप्लोमा सर्टिफिकेट

## बेटियों को सम्मान के साथ खड़ा करना हमारा दायित्व: ढींगरा

**आयोजन** ढींगरा फैमिली फाउंडेशन अमेरिका ने बांटे बालिकाओं को सर्टिफिकेट

## बेटियों को समाज में सम्मान सबका दायित्व : ढींगरा

सीहोर। नवदुनिया न्यूज

सोमवार को ढींगरा फैमिली फाउंडेशन अमेरिका द्वारा बालिकाओं को कोर्स एवं डिप्लोमा सर्टिफिकेट वितरण समारोह का आयोजन बन्नू बाई स्कूल में किया। इस अवसर पर फाउंडेशन के चेयरमेन ओम ढींगरा और उपाध्यक्ष सुधा ओम ढींगरा, इछावर विधायक शैलेंद्र पटेल, डिग्री कॉलेज प्राचार्य पुष्पा दुबे, पत्रकार बसंत दासवानी और समाज सेवी हितेन्द्र गोस्वामी विशेष रूप से उपस्थित रहे। ढींगरा फैमिली फाउंडेशन अमेरिका ने यह आयोजन किया। जिला मुख्यालय की करीब सौ बालिकाओं को इस वर्ष डीसीए का डिप्लोमा सर्टिफिकेट प्रदान किया, जबकि सौ बालिकाओं को डीसीए की 12 पुस्तकों का सेट प्रदान किया गया। कार्यक्रम को संबोधित करते हुए साहित्यकार सुधा ओम ढींगरा ने कहा कि बेटियों को सम्मान के साथ समाज में स्थान दिलाना हम सबका का नैतिक दायित्व बनता है। ढींगरा फाउंडेशन का इस दिशा में यह प्रयास है। इस मौके पर उनके द्वारा बालिकाओं की संख्या दो सौ से बढ़ाकर तीन सौ करने की घोषणा की। इसका उपस्थित बालिकाओं द्वारा करतल ध्वनि से स्वागत किया गया। फाउंडेशन के चैयरमेन ओम ढींगरा ने कहा कि हमारे द्वारा बेटियों के सम्मान के लिए लगातार प्रयास किए जा रहे हैं। उन्होंने इस अवसर पर घोषणा की कि ग्रामीण क्षेत्र में स्वच्छता के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ कार्य करने के वाली तीन बालिकाओं को पुरस्कार प्रदान किए जाएंगे। पुरस्कार दस हजार से बीस हजार रुपए तक के स्मार्ट फोन प्रदान किए जाएंगे।

इस मौके पर इछावर विधायक शैलेंद्र पटेल ने ढींगरा फाउंडेशन के इस कार्य की सराहना करते हुए कहा कि इछावर विधानसभा क्षेत्र में भी इस तरह की योजना को प्रारंभ किया जाएं। डिग्री कॉलेज प्राचार्य पुष्पा दुबे और पत्रकार बसंत दासवानी ने भी संबोधित किया। प्रारंभ में अतिथियों ने मां सरस्वती की प्रतिमा के समक्ष दीप प्रज्वलन कर कार्यक्रम की शुभारंभ किया अतिथियों का स्वागत पीसी लैब की ओर से सन्नी शहरयार और सोनू ठाकुर द्वारा किया गया। कार्यक्रम का संचालन करते हुए पंकज पुरोहित ने सभी के प्रति आभार ज्ञापित किया।



सीहोर। अतिथि बालिकाओं को कोर्स एवं डिप्लोमा सर्टिफिकेट प्रदान करते हुए।

**कार्यक्रम** ढींगरा फैमिली फाउंडेशन अमेरिका ने बालिकाओं को वितरित किए डिप्लोमा सर्टिफिकेट

## अमेरिका की संस्था 300 बेटियों को सिखाएगी कंप्यूटर

संरक्षक एवं सलाहकार संपादक
**सुधा ओम ढींगरा**
●
प्रबंध संपादक
**नीरज गोस्वामी**
●
संपादक
**पंकज सुबीर**
●
कार्यकारी संपादक
**शहरयार**
●
सह संपादक
**पारुल सिंह**
●
आवरण चित्र
**पल्लवी त्रिवेदी**
●
डिज़ायनिंग
**सनी गोस्वामी**
●

**संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय**
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545, 07562695918
मोबाइल : 09806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
ऑनलाइन 'शिवना प्रकाशन'
http://shivnaprakashan.blogspot.in
फेसबुक पर 'शिवना प्रकाशन'
https://facebook.com/shivna prakashan
●
एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)
1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)
बैंक खाते का विवरण :
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

शिवना साहित्यिकी
**वर्ष : 2, अंक : 5**
**त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2017**
**RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929**
**ISSN : 2455-9717**

कुछ यूँ...

**संपादकीय**
शहरयार / 4
**व्यंग्य चित्र**
काजल कुमार / 5
**कविताएँ**
तनवीर अंजुम / 6
वंदना मिश्र / 7
जया जादवानी / 8
**शख़्सियत**
होता है शबोरोज़ तमाशा मिरे आगे
सुशील सिद्धार्थ / 9
**कहानी**
नीला.....नहीं शीला आकाश
अमिय बिन्दु / 15
**फिल्म समीक्षा के बहाने**
जौली एलएलबी-2 /
वीरेन्द्र जैन / 24
**आवरण चित्र के बारे में....**
गेंद वाला फोटो / पल्लवी त्रिवेदी /25
**ख़बर कथा**
एक थी साहिला और बिखरे सपने
ब्रजेश राजपूत / 26
**पुस्तक-आलोचना**
उजली मुस्कुराहटों के बीच / डॉ. शिवानी गुप्ता / 30
**पुस्तकें इन दिनों....**
छल / अचला नागर / 34
पकी जेठ का गुलमोहर / भगवान दास मोरवाल / 36
भ्रष्टाचार के सैनिक / प्रेम जनमेजय / 46
**कथा-एकाग्र**
शकील अहमद / 35
**समीक्षा**
डॉ. सुशील त्रिवेदी / जलतरंग / 37
माधुरी छेड़ा / गीली मिट्टी के रूपाकार / 39
**एक कहानी, एक पत्र....**
सुधा ओम ढींगरा / 41
**पड़ताल**
नया मीडिया : नया विश्व, नया परिवेश
डॉ. राकेश कुमार / 42
**तरही मुशायरा** / 47

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

## संपादकीय

# तुम्हारे पाँव के नीचे कोई ज़मीन नहीं

शहरयार
shaharyarcj@gmail.com

एक कहावत है कि दाई से पेट और नाई से बाल नहीं छिपाए जा सकते। मुझे लगता है कि समय के साथ नई कहावतें भी बननी चाहिएँ, या फिर पूर्व की कहावतों में कुछ समयानुसार परिवर्तन होने चाहिए। नई कहावत यह कि दाई से पेट, नाई से बाल और प्रकाशक से लेखक का क़द नहीं छिपता। इसलिए नहीं क्योंकि लेखक की पुस्तक को बेचता तो वही है। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि इन दिनों प्रकाशक होना सबसे मुश्किल कार्य होता जा रहा है। विशेषकर हिन्दी का प्रकाशक होना। कारण ? कारण दो-तरफ़ा है, पहला तो यह कि हिन्दी का परंपरागत पाठक लगभग विलुप्त हो चुका है (साहित्य का, साहित्येतर का नहीं), दूसरा यह कि उसके बाद भी हिन्दी के लेखक को इस बात का अहसास तक नहीं है कि उसकी सत्ता जा चुकी है। दुष्यंत याद आते हैं-

तुम्हारे पाँव के नीचे कोई ज़मीन नहीं
कमाल ये है कि फिर भी तुम्हें यक़ीन नहीं

हिन्दी साहित्य के लेखक को अभी भी यह लगता है कि उसकी किताबें लाखों नहीं तो हज़ारों की संख्या में तो बिक ही रही हैं। इसके उलट जो पुस्तकें साहित्येतर प्रकाशित हो रही हैं, उनकी बिक्री सचमुच इसी प्रकार हो रही है। मैं कहीं से भी साहित्येतर पुस्तकों को साहित्यिक पुस्तकों से बेहतर साबित करने की कोशिश नहीं कर रहा हूँ, लेकिन सच यह भी तो है कि उन पुस्तकों को पाठक मिल रहे हैं। एक प्रकाशक के रूप में कहूँ, तो पिछले वर्ष इस प्रकार की दो किताबों ने मुझे चौंकाया है। यह दोनों ही किताबें साहित्य की परंपरागत किताबें नहीं थीं, दोनों के ही लेखक कोई जाना-पहचाना नाम नहीं थे, उनकी पहली ही किताब थी। लेकिन बिक्री के आँकड़े बताते हैं कि इन पुस्तकों ने कई उन पुस्तकों से ज़्यादा बेहतर प्रदर्शन किया, जिनसे हमें प्रदर्शन की उम्मीद थी। यह बात बार-बार उठ रही है कि प्रकाशक हिन्दी के पूरे वातावरण को प्रदूषित कर रहे हैं, वे इस प्रकार की या उस प्रकार की पुस्तकें छाप रहे हैं। एक प्रकाशक होने के नाते बहुत विनम्रता के साथ कहना चाहूँगा कि प्रकाशक का भी पेट होता है और उसका भी घर, बीवी, बच्चे सब होते हैं। प्रकाशक कबीर नहीं होता जो घर फूँक कर निकल पड़े। यदि परंपरागत हिन्दी साहित्य के पाठक घट गए हैं, तो उसके कारणों की तलाश लेखकों को ही करनी चाहिए कि आख़िर यह हुआ क्यों है ? और यदि कोई उचित कारण मिल जाए तो उसके निवारण का प्रयास करना चाहिए। पाठक लौट आए, किताबें ख़रीदने लगे तो प्रकाशक क्यों नहीं छापेगा उन किताबों को ?

इस बार यह बात उठाने की आवश्यकता इसलिए हुई कि पिछले दिनों प्रकाशन को लेकर कुछ कड़वे अनुभव हुए। और यह कड़वे अनुभव इसी कारण हुए कि लेखक को अभी भी यह पता नहीं है कि उसकी सत्ता का क्षरण हो रहा है। उसकी सत्ता असल में उसकी सत्ता नहीं थी, वह तो पाठकों की सत्ता थी। पाठक हैं तो वह भी है। मुझे ऐसा लगता है कि हिन्दी का लेखक अपने बनाए हुए एक स्वर्ग का क़ैदी होकर रह गया है। यह स्वर्ग उसीने रचा है और यहाँ रहता भी बस वही है। स्वर्ग में रहने के कारण लेखक के पास अनुभवों की लगतार कमी हो रही है। स्वर्ग में अनुभव कब होते हैं ? स्वर्ग तो स्वर्ग होता है। लेकिन पाठक तो उसी लेखन के साथ जुड़ाव महसूस करता है, जो अनुभव से उपजता है। क्योंकि उस लेखन में पाठक कहीं न कहीं अपने आप को भी शामिल पाता है। यदि कोई लेखक अपने पाठक के साथ कनेक्ट नहीं कर पा रहा है, तो यह उस लेखक की बड़ी असफलता है। लेखक और पाठक के बीच असली संबंध तो इसी कनेक्टिविटी का होता है। कार्पोरेट, बाज़ार, सरोकार, एब्स्ट्रेक्ट जैसे भारी-भरकम शब्दों ने हिन्दी साहित्य पर अपने आप को इस प्रकार थोपा कि एक फ़ैशन की तरह लेखक इनके पीछे चल पड़ा, बिना यह सोचे-समझे कि अंततः कहानी तो कहनी ही पड़ेगी न ? साहित्य की कोई भी विधा अतिरिक्त का बोझ नहीं उठा पाती। बल्कि कला की कोई भी विधा अतिरिक्त का बोझ नहीं उठा पाती है। यदि कुछ भी ऐसा है जो लादा जा रहा है, ठूँसा जा रहा, तो सबसे पहले जो चीज़ डैमेज होती है वह रचना का कला पक्ष ही होता है। और पिछले कुछ सालों से हिन्दी में लादने और ठूँसने का कार्य बहुत ज़्यादा हो रहा है। नतीजा यह कि कला पक्ष क्षरित हुआ और उस कारण पठनीयता घटती चली गई। प्रकाशक हूँ इसलिए नहीं चाहूँगा कि कुछ भी ग़लत हो। लोकप्रिय किताबों के साथ-साथ गंभीर किताबों को भी पाठक पसंद करते रहें। अंततः किताब किसी लाइब्रेरी में सड़ने के लिए नहीं छापी जाती बल्कि किसी पाठक के हाथों का प्रेमिल स्पर्श पाने के लिए छापी जाती है। हिन्दी की किताबों को पाठक का यह स्पर्श मिलता रहे उसके लिए लेखक को अपने बनाए हुए स्वर्ग से बाहर निकलना ही होगा, क्योंकि उस स्वर्ग ने उसे मिथ्याभिमान के अलावा कुछ भी नहीं दिया है.......।

शहरयार

# व्यंग्य-चित्र

काजल कुमार

kajalkumar@comic.com

कविता

# आधी आबादी की कविताएँ....

वंदना मिश्र

जया जादवानी

तनवीर अंजुम

## तनवीर अंजुम

### मिनिस्टर साहिबा की पावर प्वाइंट फ़ाइल

यू. एन. ओ. के सामने पेश करने को
मिनिस्टर साहिबा की पावर प्लान्ट फ़ाइल में
तस्वीरें कौन सी रखी जाएँ ?
सड़कों पर भिखारी बच्चे
एक जैसे लगते हैं कोई भी रख लें

बुरखों में मलबूस औरतों के चेहरे
एक जैसे लगते हैं
कोई भी रख लें

घमाकों के बाद मस्ख़ शुदह चेहरे
एक जैसे लगते हैं
कोई भी रख लें
दाढ़ियों में छिपे मोलवियों के चेहरे
एक जैसे लगते हैं
कोई भी रख लें

मिनिस्टर साहिबा के लिए
पावर प्वाइंट फ़ाइल में
डिज़ाइन कौन सा रखा जाए
रंग कौन से भरे जाएँ
ऑपशन्स बेशुमार हैं
किसी माहिर को बुलाएँ
***

### इंटरव्यू

''कैसे हो ? यहाँ कैम्प में अपना घर याद आता है?''
''हाँ, मगर उसकी छत गिर गई थी।''
''अपने साथ खेलने वाले याद आते होंगे?''
''हाँ, मगर वह सब मर चुके हैं।''
''क्या दिल चाहता है अपने स्कूल वापस जाने को?''
''हाँ, मगर वह पूरा जल गया था।''
''क्या अपने बाप से मिलवाओगे?''
''हाँ, मगर उसकी क़बर में बस उसका हाथ दफ़्न है।''
''क्या तुम्हारी माँ तुम्हारे साथ हैं?''
''हाँ, रात को ख़्वाब में साथ होती हैं।''
''तुम बड़े होकर क्या बनना चाहते हो?''
''मैं बड़ा हूँ, बम बना लेता हूँ।''
***

### नैनसी

शहरों में जहाँ कैक्टस के दरख़्त ज़्यादा हैं
उसने एक साएबान और एक बेंच बनाई है
जिस पर नैनसी आराम से उसकी आग़ोश में
लेट या बैठ सकती है
पूरे चाँद की रात में
नैनसी उससे मिलने ज़रूर आती है
और इसी बेंच पर
उसके काँधे पर सर रख कर
उससे बातें करती है
या वह ख़ामोशी से
चाँद सहेरह और कैक्टस के दरख़्तों को
देखते रहते हैं
इस बीच वह अपना दायाँ हाथ
नैनसी की कमर के गिर्द डाले रहता है
अगर नैनसी को नींद आ जाती है
वह बिलुल साकित हो जाता है
ताकि वह जितनी देर सो सकती है
सोती रहे
नैनसी
जो पीटर की बीवी
और डगलस की बहन है
और पूरे चाँद की रात में
उन्हें धोखा देकर उससे मिलती है
अगर किसी रात बेंच पर
देर तक सोती रह जाए
वह तेज़ रफ़्तार गाड़ी और
शिकारी बंदूक के साथ
नैनसी को ढूँढ़ते हुए आ जाते हैं
और उसे अकेला सोता हुआ पाकर
गाड़ी में डाल कर ले जाते हैं
***

### बद किरदारी से नफ़रत

वह तेरह साल की है
और सबको बताती है
कि अपने मामूजान के साथ
अँधेरी कोठरी में मिला करती है

वह चौदह साल की है
और दो लड़कों को छोड़ने के बाद
अब ड्राइवर के सोलह सालह बेटे के साथ
भाग निकलने का मंसूबा बना रही है

वह पंद्रह साल की है
और शौहर से हर रोज़ मार खाने के बावजूद
पेट से है

वह चालीस साल की है
और तीनों नौकरानियों की
बदकिरदारी से
नफरत के बाएस
उन्हें बगैर तनख़्वाह दिए
नौकरी से निकाल चुकी है
***

प्राध्यापक
इक़रा यूनिवर्सिटी
कराची,
पाकिस्तान

## वंदना मिश्र

### बलात्कार की ख़बर

बलात्कार की ख़बर छपी है अख़बार में
पढ़ते हैं लोग
जान लेना चाहते हैं
छोटे से छोटा विवरण।
उँह इसने तो बस इतना ही छापा है
देखो यह पढ़ो,
इस अख़बार में लिखी हैं
सारी बातें साफ़-साफ़
कैसे घेर लिया था उन लोगों ने
लड़की को
सरेशाम, लबे सड़क
किस हाल में मिली थी वह पुलिस को
चार दिन बाद
कितने लोग शामिल थे
इस वहशियाना कृत्य में।

यह देखो लड़की का नाम-गाँव भी छापा है
तस्वीर के साथ
अच्छा, अच्छा, यह लड़की
हाँ, कुछ मग़रूर थी
चलती थी सिर उठा कर
इसके साथ तो होना ही था
ऐसा कुछ
आज नहीं तो कल।
खबर पढ़ते हैं
बच्चियों के माँ-बाप
सहम जाते हैं
लगा देते हैं बेटियों पर
कुछ और बंदिशें-
देखो दिन ढलने के बाद
कहीं आना जाना नहीं
दिन में भी नहीं निकलना
घर से बाहर अकेले।

बलात्कार की एक घटना
तबाह करती है
एक जीवन-परिवार
और छोटी कर देती है
लड़कियों की पहले ही से
बहुत सीमित दुनिया।
***

### काबुल-हेरात की हमीदा, नजमा, नासिरा, रुख़साना के नाम

हमीदा, नजमा, नासिरा, रुख़साना।
ख़बर मिलती है तुम्हारी
अख़बारों, पत्र-पत्रिकाओं से
तुम्हारी किताबें, तुम्हारे स्टेथस्कोप
तुम्हारी दस्तकारी, कारीगरी
सब छीनकर तुम्हें वापस भेज दिया गया है
घर की चारदीवारी में।

चेहरे से नक़ाब तनिक सरक जाए
तो तुम पर वे बरसाते हैं चाबुक
दिल दुखता है पढ़कर
हमारे आँसू बहते हैं बेआवाज़।

नाउम्मीद न हो हमीदा, रुख़साना
जल्द ही तुम फिर वापस लौटोगी
अपनी तसल्लीबख़्श काम की दुनिया में
अपने कॉलेजों, अस्पतालों में
मिलोगी अपनी सहेलियों, दोस्त, मित्र,
साथियों से।

नजमा, नासिरा
तुम्हारे ऊपर उठी चाबुकें ,
तो थम जाएँगी हवाओं में जल्दी ही
नया निज़ाम आया और
तुम उतार फेंकोगी बुर्के
हँसती-खिलखिलाती चल दोगी
अपने-अपने स्कूलों की ओर।

हम क्या करें नजमा
बताओ रूख़साना
हमारे ये पर्दे कैसे उतरें
हज़ारों सालों से तह-दर-तह
जो डाले गए हैं हमारी आत्मा
हमारी बुद्धि हमारी प्रतिभा-कल्पना पर
हम मानी गई हैं
दान की वस्तुएँ निरीह बछिया की तरह
हम पवित्र हैं, पूज्य हैं
या हैं दासी और अपवित्र
हम हैं साक्षात देवी का स्वरूप
या फिर समस्त कलुष की खान।

हम कब समझी जाएँगी
औरत हाड़-माँस की
अपनी सारी अच्छाइयों-बुराइयों
ताकतों-कमज़ोरियों समेत।

हमारे यहाँ सरकार बदलने से
कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता नजमा
निजाम बदलते हैं पर ,
नहीं बदलता हमारा समाज।
वह मानता रहता है हमें
रक्षिता, भोग्या, दासी या देवी।

अब हम ही बदलेंगे हमीदा
हम ही बदलेंगे ख़ुद को
अपने आसपास को
दूर दराज को
नहीं दासी, अनुचरी, भोग्या देवी नहीं
हम बनेंगे साथी, दोस्त, हमदम, हमराह
हमक़दम बन हम बढ़ेंगे आगे
नाप लेंगे धरती
पर्वतों पर फहराएँगे पताका
हम रहेंगे ऐसे जैसे ख़ुशबू
जैसे पृथ्वी में रस
जैसे आकाश में विस्तार।
***

### शिकायत नहीं

अर्से से मुर्दा पड़े शहर में
आज चहल-पहल है
सभी कदम उठ रहे हैं स्टेडियम की ओर।

एक नया खेल हो रहा है
खचाखच भरे स्टेडियम में
मैदान के बीचों बीच
सिर से पाँव तक
बुर्के से ढँकी एक औरत
बैठी है घुटने टेके
हाथ बँधे हैं पीठ पर
हज़ारों हज़ार आँखें टिकी हैं उस पर।

अपमान, दहशत में घिरी औरत
पता नहीं ज़िन्दा है
या मर गई है बैठे-बैठे।

उस पर चाबुक बरसाए जाएँगे

वह व्याभिचारिणी है
और वह कहाँ है
जो था इसके पाप कर्म में सहभागी?

उसे हम नहीं जानते
उसके खिलाफ़ हमारे पास
कोई शिकायत नहीं।

## वे फिर आए हैं

वे फिर आए हैं
चाबुक फटकारते सटाक-सटाक

इस बार वे सुधार रहे हैं
स्वात घाटी की औरतों को

उज़्मा, हुब्बा
चेहरे अलग-अलग क्यों हैं ?
घर से बाहर निकलने की जुर्रत
कैसे की तुमने ?

तुम मर्द के कन्धे से कन्धा मिलाकर
काम करेगी ?
मुल्क की तरक़्क़ी में हिस्सा बँटाओगी ?
सटाक-सटाक

चाबुक उधेड़ रही है
उनकी नर्म-नाज़ुक पीठ
छिल रही है उनकी आत्मा
रिसता है ख़ून उनके दिल से

डर से सहमी वे
छिप गई हैं तहख़ानों में
तालीमगाहे निसवाँ पर
लटक गए हैं ताले
थर-थर काँपती लड़कियाँ
झुक गई हैं मशीनों पर
रात-रात जागकर सिल रही हैं बुर्क़े ।

सख़्त और ठंडी-तीखी निगाहें
बाहर डटी हैं मुआयना करती
निगाहें जो बरसाती हैं चाबुक औरत पर
और कोशिश करती हैं बदलने की
उसे एक ज़िन्दा लाश में।
***

## जया जादवानी

## सुनो

जब मेरी चीख छूटती है मेरे बाण से
फाड़ देती है कपड़े मेरी आत्मा के
तब कहती हूँ - सुनो
जब रोती हूँ चुपचाप
आँसू भिगोते मेरा सादा कागज़
कुछ उतरता है उन पर स्याही बनकर
तब कहती हूँ - सुनो
जब रात की काली चादर में
ख़ामोशी करती सूराख
कड़कती आसमाँ में बिजली बनकर
फूट निकलती जलधाराओं में
तब कहती हूँ - सुनो
जब इन लम्बे काले रास्तों के बीहड़ में
भागती हूँ लहूलुहान ज़ख़्मी पैर लिए
भटकती हूँ गुमती हूँ
दबोच ली जाती हूँ
छटपटाती हूँ छूटने को
तब कहती हूँ - सुनो
जब बैठती हूँ कमाठीपुर के कोठे पर
लगाकर लिपस्टिक मुस्कराती
उतारते कपड़े निर्लज्जता से
थूकती समूची सभ्यता के मुँह पर
कहती हूँ - सुनो
जब नोचते हैं कपड़े हिंसक हाथ
दूर किसी वीराने में
या बाज़ार में सरेआम
बिकती हूँ खरीदी जाती हूँ
जलती हूँ नोटों में तुलती हूँ
रूह की चिंगारियों में जलती तड़फ कर
कहती हूँ - सुनो
जब हँसती हूँ तुमसे पैसे लेते हुए
जब रोती हूँ बच्चे जनते हुए
जब गाती हूँ अपने दर्द को
अपने ज़ख्म सिलते हुए
थरथराती हैं उँगलियाँ किसी टाँके पर
तब कहती हूँ - सुनो
सुनो ओ चिड़ियों ! सुनो आसमानों !
सुनो पृथ्वी ! सुनो मनुष्यों !
ठहर गया होता बाण अधबीच
अगर सुना गया होता मुझे
अब तक कमज़कम एक बार समूचा
***

jaya.jadwani@yahoo.com

**फार्म IV**

**समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण ( देखें नियम 8 )।**

**पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी**

**1. प्रकाशन का स्थान :** पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

**2. प्रकाशन की अवधि :** त्रैमासिक

**3. मुद्रक का नाम :** जुबैर शेख़।
**पता :** शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

**4. प्रकाशक का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित।
**पता :** पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

**5. संपादक का नाम :** पंकज सुबीर।
**पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
**क्या भारत के नागरिक हैं :** हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. **उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
**क्या भारत के नागरिक हैं :** हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

**मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।**

**दिनांक 20 मार्च 2017**

**हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित**
**( प्रकाशक के हस्ताक्षर )**

शख़्सियत (ज्ञान चतुर्वेदी)

# होता है शबोरोज़ तमाशा मिरे आगे (2)

सुशील सिद्धार्थ

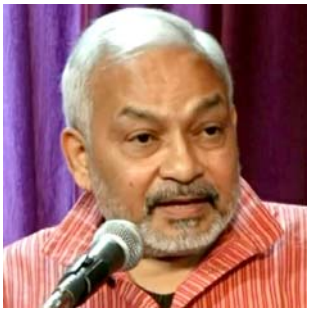

'संस्मरण में नुकीले कोने तराशे नहीं जाते इसीलिए इन्हें पढ़ते हुए स्निग्ध त्वचा छिल भी सकती है।'-निर्मल गुप्त

**क्षेपक**

*****

ज्ञान चतुर्वेदी पर छप रहे संस्मरण के पहले हिस्से को पढ़ते हुए कुछ दिलचस्प प्रतिक्रियाएँ मिलीं। किसी ने कहा, 'इसमें ज्ञान चतुर्वेदी कहाँ हैं!' इन प्रिय पाठक को शायद आभास नहीं कि यह संस्मरण की पहली किस्त है। भूमिका सरीखी। मैं चाहता हूँ कि ज्ञान जी के बहाने व्यंग्य के उस समय को समझ सकूँ जो 'ज्ञान समय' है। उनके जैसा महान् लेखक केवल अपनी किताबों का क़ैदी नहीं होता। वह पूरे परिदृश्य में व्याप्त होता है। कहीं आदर्श, कहीं उदाहरण, कहीं संदर्भ, कहीं प्रतिरोध, कहीं निर्देश के रूप में। ज्ञान जी विमर्श गोष्ठियों में हमेशा होते हैं। होते हैं तो भी, नहीं होते हैं तो भी। होते हैं तो वे समारोह पर छाए रहते हैं। बाकी लोग उनकी छत्रछाया में रहते हैं। नहीं होते हैं तो उनकी रचनाएँ केंद्र में रहती हैं। बाकी लोग परिधि पर पड़े-पड़े अपनी बारी के इंतज़ार में 'परसाई परमात्मा' को पुकारते रहते हैं। हो सकता है कि यह मूल्यांकन किसी को असुविधाजनक लगे, पर जनमत यही है। ऐसा प्रभामंडल मैंने नरेंद्र कोहली का देखा है। बस।

बाकी, कुछ लोग तो एक आत्ममुग्ध टॉर्च साथ लेकर चलते हैं। कुर्सी पर बैठते हैं तो उसे जलाकर अपनी खोपड़ी के पीछे घुमाते रहते हैं कि देखो, यह है मेरा आभामंडल। कुछ यह काम अपने चेला-चेली को सौंप रखते हैं। चेला-चेली लोगों के कान फूँकते रहते हैं कि टॉर्चित बहुत चर्चित हैं। पहुँचे हुए हैं। अभी इनकी खोपड़ी के पीछे से व्यंग्यबोध भक्क से जलेगा। तुम्हारा सरोकार धक्क से रह जाएगा।

(इस 'टॉर्च' पर सुरेश कांत ने टिप्पणी की है-'दूसरी तरफ कुछ आसाराम टाइप के मठाधीश लेखक ऐसे भी हैं, जो सामने बैठे सत्संगी लेखकों में से किसी पर टॉर्च मारकर अपने मुस्टंडों को इशारे से कहते हैं कि आज रात यह लेखक चाहिए 'पुरस्कृत' करने के लिए! अवश्य सुशील भाई, निर्भय जज्ञ करो तुम जाई'।)

इसलिए मैं इस समय को समझ रहा हूँ। प्रत्यक्ष कथनों के अभ्यस्त लोगों को कुछ दिक़्क़त तो हो सकती है। ज्ञान कहाँ हैं, यह जानने के लिए कुछ मेहनत उनको भी करनी होगी। तड़ से तैयार जूस गटक कर स्वाद की सराहना कराहना करने वाले फल को छीलने का हुनर भी सीखें। यह भी जानें कि हर फल को छीलने का तरीक़ा अलग होता है। संतरा और अनान्नास छीलने का शिल्प जुदा होता है। ऐसे ही हर लेख, संस्मरण माँग करता है कि उसे उसी की तरह पढ़ा जाए। ज़ाहिर है, इसमें (ज्ञान चतुर्वेदी पर जारी संस्मरण में) तमाम संदर्भ आएँगे। पाठक को धैर्य रखना होगा। जैसे,कुछ कार्यक्रमों से पहले चेतावनी होती है, 'कृपया कमज़ोर दिल वाले इसे न देखें।'...वैसे ही क्या यह चेतावनी दी जाए कि 'कमज़ोर धैर्य वाले इसे न पढ़ें।'

किसी पाठक ने कहा कि मैं निजी बातें न लिखूँ। यह प्रतिक्रिया तो अद्भुत है। संस्मरण, डायरी और आत्मकथा तो निजता की विधाएँ ही हैं। मैंने जो जिया, मुझे जो लगा वह ही तो लिखूँगा। हाँ, यह ध्यान रहेगा कि 'व्यक्तिगत' न लिखूँ। वैसे जब प्रश्न लेखन, संपादन, पुरस्कार, प्रकाशन, खंडन, मंडन, निमंत्रण, षड्यंत्रण के होंगे तब जितना ज़रूरी है उतना 'व्यक्तिगत' तो लेना ही होगा। वरना लिखा क्या जाएगा।

यह व्यंग्य का ईश्वर जानता है मैं किसी पर निशाना नहीं साध रहा। संस्मरण में किसी निशानानशीन (गद्दीनशीन की तर्ज़ पर) का नाम ही नहीं। वैसे, मैं निशानदेही कर रहा हूँ। आख़िर ज्ञान चतुर्वेदी, प्रेम जनमेजय सहित सारे ज़िम्मेदार लोग ही तो कह रहे हैं कि-

व्यंग्य में आलोचना अभी तक विकसित नहीं हुई, व्यंग्य का सौंदर्यशास्त्र नहीं बना, वरिष्ठों में उदारता कुछ कम है, युवाओं में विनम्रता कुछ और होनी चाहिए, अख़बार के कॉलम में छूट नहीं, पत्रिकाओं में लिखने की लूट नहीं। आदि इत्यादि।

तो मुझे किसी का नाम लिए बस इतना पूछना है कि क्या व्यंग्य की यह हालत हिमेश रेशमिया, बेनज़ीर भुट्टो, कपिलदेव और बाबा रामदेव के कारण है? यदि हाँ, तब कुछ नहीं कहना। यदि नहीं, तो जो ज़िम्मेदार हैं, उनका नाम आएगा या फिर आना चाहिए। आएगा, तो व्यक्तिगत कहा जाएगा। तो फिर न लिखूँ? क्षमा करें, जैसे आप देश पर बात करते समय राजनीतिक पार्टियों व नेताओं के नामों से नहीं बच सकते वैसे ही व्यंग्य के रचना-देश पर बात करते हुए ज़िम्मेदार नामों से बचा नहीं जा सकता। यानी,सवाल हो कि देश के विभाजन के लिए कौन ज़िम्मेदार है! तो किसका नाम लूँ? क्या यह कह दूँ कि सुरेश कांत, सुशील सिद्धार्थ, निर्मल गुप्त, विजी श्रीवास्तव ने देश का बँटवारा कराया है! कोई कार्य कारण संबंध होता है कि नहीं? मैं बिना लिखे भी मुस्कुराता रह सकता हूँ। मगर

बकौल प्रिय कथाकार पंकज सुबीर,'अब सच कहने-लिखने का इतना भी साहस नहीं है तो कोई व्यंग्यकार क्यों बने! लस्सी और रबड़ी की दुकान न खोल ले।' दोस्तो, मुझे लिखना ही होगा।

लिखना शुरू करने से पेशतर मैंने फेसबुक पर लिखा था कि, 'एक संस्मरण लिखना है। आजकल इसे लिख रहा हूँ। यह एक कठिन और साहसिक रचनात्मक काम है। ज्ञान चतुर्वेदी के साथ मेरे रिश्ते बड़े भाई-छोटे भाई या गुरु-शिष्य जैसे हैं। उन तक पहुँचने के पहले मैं जहाँ-जहाँ से गुज़रा इसमें उसका भी स्मरण है। इसलिए इसमें श्रीलाल शुक्ल, प्रेम जनमेजय, प्रताप सहगल, निर्मल गुप्त, सुरेशकांत, पंकज सुबीर, राहुल देव, भोपाल के सारे साथी आदि-आदि भी हैं। आदि के अलावा कुछ ऐसे भी हैं जो व्याधि हैं। इस विधा की भी हैं। वे भी हैं। अगर ठीक से लिख पाया तो संस्मरण में किसी का मरण होगा किसी का स्मरण। आवरण उतरेंगे। आचरण नंगे पैर भाग खड़े होंगे। यह मेरी अग्निपरीक्षा है। उनकी भी है, जो इसमें आएँगे। ...बस मेरा रचनात्मक साहस बना रहे।'

इस पर प्रतिक्रिया देते हुए वरिष्ठ व्यंग्यकार सुरेश कांत ने फेसबुक पर लिखा था, 'आप बिंदास लिखिए, हम अपने क्षरण-मरण के लिए तैयार हैं। और मैं तो कहता हूँ, और मैं क्या कहता हूँ, शहज़ाद अहमद ने मेरी तरफ से पहले ही कह दिया है कि-

तख़्ता-ए-दार पे चाहे जिसे लटका दीजे
इतने लोगों में गुनाहगार कोई तो होगा।'

अब आगे-

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी पर लिखते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है कि वे सीमित अर्थों में साहित्यकार न थे। किसी बड़े रचनाकार (या महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्त्व) पर बात करते हुए यह अवधारणा मुझे हमेशा याद आती है। मैं कहना चाहूँगा कि हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, नरेंद्र कोहली, ज्ञान चतुर्वेदी जैसे लोग सीमित अर्थ में व्यंग्यकार नहीं हैं। इन्होंने केवल लिखा ही नहीं है, इन्होंने कुछ और काम भी किए हैं। जिन



कामों के कारण विधा गतिशील, प्रभावी और जीवंत रही है। इन कामों का ज़िक्र आगे आएगा।

यहाँ एक नाम का ज़िक्र बहुत ज़रूरी है। कारण यह कि इनकी वजह से ही मैं पहली बार ज्ञान जी से मिल पाया था। यह नाम है प्रेम जनमेजय का। प्रेम जी व्यंग्य की एक संस्था हैं। लेखन, संपादन, संयोजन, भ्रमण, प्रोत्साहन आदि कामों को एक साथ करते हुए न वे थकते हैं। न चुकते हैं। और न थकेंगे न चुकेंगे। प्रेम जी ने हरियाणा साहित्य अकादमी के एक कार्यक्रम में शामिल होने का अवसर मुझे दिया था। कार्यक्रम के अलावा अकादमी की पत्रिका के व्यंग्य विशेषांक में मेरी रचना भी थी। इसके अतिथि संपादक प्रेम जी थे।

पंचकूला जाते हुए ज्ञान जी ने हमें ज्वाइन किया। कार की पिछली सीट पर बानक कुछ ऐसा बना कि मेरे एक तरफ़ प्रेम जी ...एक तरफ़ ज्ञान जी। अगली सीट पर विराजे..और पूरे वज़न के साथ विराजे एक सज्जन ने मुड़कर देखते हुए कहा था ...दो पाटों के बीच में फँस गए गुरू! मैंने कहा था, गुरू पूरी कार तुम्हारी वजह से फँसी हुई है!

पूरे रास्ते व्यक्तिगत बातें कम हुईं। लेखन और व्यंग्य को लेकर ख़ूब चर्चा हुई। बातों-बातों में ज्ञान जी ने अपनी भाषा पर भी कहा। सफ़ाई नहीं दी। कहा। ज्ञान जी ने उपन्यास का प्रसंग आने पर प्रेम जी के आलस्य की ख़बर भी ली। कहा नहीं। ख़बर ली। प्रेम जी के पास अचूक बहाने होते हैं। और होती है अद्भुत मुस्कान। इन दो तत्त्वों के सहारे उन्होंने ज्ञान जी की ख़बरलेई का सामना किया।

इस यात्रा से मुझे पहली बार ज्ञान जी के निकट आने का अवसर मिला। ...कार्यक्रम में हुए व्यंग्य पाठ और विमर्श के बाद एक दिलचस्प बात हुई। ज्ञान जी ने बहुत स्नेह से कहा,सुशील जी आप बहुत अच्छा बोले। प्रेम जी मुस्कुराए, ये हमेशा ही अच्छा बोलते हैं। ज्ञान जी हँसे, यार प्रेम... हमेशा कोई कैसे अच्छा बोल सकता है। ...अब दोनों ठहाके लगा रहे थे। मैं उनके ठहाकों के दो पाटों के बीच में था।

हरियाणा साहित्य अकादमी के इस कार्यक्रम में मैंने तमाम वरिष्ठ व्यंग्यकारों की मौजूदगी में अपने विचार रखे। श्रोताओं में अनेक प्रबुद्ध श्रोताओं के साथ प्रसिद्ध आलोचक डॉ. रमेश कुंतल मेघ भी थे। मेघ जी छड़ी के सहारे आहिस्ता-आहिस्ता चलते हैं। मेरे बोलने के बाद मेरे पास आए। आशीर्वाद दिया। मुझे ख़ुशी यह थी कि मैंने एक दार्शनिक आलोचक की आत्मीयता हासिल की। लखनऊ में उनसे कई बार बात हो चुकी थी। बाकी उनको पढ़ा तो लगातार था। 'तुलसी: आधुनिक वातायन से' पढ़कर तो मैं उनका भक्त बन गया था।

जहाँ तक याद पड़ता है कि इस कार्यक्रम में यज्ञ शर्मा, तरसेम गुजराल, सुदर्शन वशिष्ठ, लीलाधर जगूड़ी आदि भी थे।

मगर सच कहूँ तो मेरे मन में ज्ञान जी से बात करने की इच्छा बनी रही। व्यवस्था ऐसी थी कि हमारे कमरे अलग-अलग थे। मैं किसी और के साथ अलहदा था। पान-खान के बाद मैं तो सो गया। सुबह ज्ञान जी मेरे कमरे में आए। तब वे अनेक से घिरे हुए थे। एक अकेले उनसे क्या बात करता। हाँ, उस मौक़े पर एक चित्र किसी ने खींचा था, जो मेरे पास है। इसलिए...बात न हो पाई, यह अलग बात है।

इससे पहले कार्यक्रम में मैंने उनको अपना व्यंग्य संग्रह 'नारद की चिंता' भेंट किया था। वे ख़ुश हुए थे। उलट-पलट कर देखा। बोले, हाँ संग्रह जैसा संग्रह लगता है। वरना लोग तीन-चार पुरानी किताबों से पत्ते फेंटकर दो-चार नए पत्ते मिलाकर लोकार्पणेय किताब तैयार कर डालते हैं। फिर उन्होंने पास में खड़े एक लेखक को देखा। पता नहीं आदतन या इरादन...हँसे। और चुप हो गये।

इस संग्रह को भेंट करने की भी एक कहानी है। जब संग्रह आया था तो मैं इसे

जल्द से जल्द ज्ञान चतुर्वेदी तक पहुँचाना चाहता था। उन्हीं दिनों किसी कार्यक्रम में एक आत्मीय व्यंग्यकार से मुलाक़ात हुई। उनको संग्रह दिया तो उन्होंने पूछा कि और किस किस को दिया। एकाध लोगों के नाम लेते हुए मैं बोला कि ज्ञान चतुर्वेदी को भेजना है। वे अतिरिक्त स्नेह से भर गए। बोले, मुझे दे दो। मैं भिजवा दूँगा। मैंने पुस्तक दे दी। ...फिर महीने बीते। साल हो गया। कोई ख़बर नहीं। लोगों से सुना था कि ज्ञान जी जवाब ज़रूर देते हैं। मुझे लगा कि शायद किताब इतनी ख़राब है कि ज्ञान जी ने पन्ने पलटकर एक तरफ़ फेंक दी होगी। और फोन करके अपनी किताब के बारे में राय लेने का साहस मेरा न हुआ। तब ज्ञान जी से फोन पर शायद एकाध बार ही बातचीत हुई थी।

...जब इस कार्यक्रम में संग्रह भेंट किया तो ज्ञान जी ने कहा,मुझे पहले भेजते तो आज इस पर तुमसे कुछ बात होती। 'आपको नहीं मिला था?'..मैंने पूछा। ज्ञान जी ने कहा, मैं पूरा पढ़ता या जो भी, मगर मुझे याद रहता कि यह किताब मेरे पास आई है। तुमने कब भेजा था ?

मैंने पूरी बात बताई। ज्ञान जी मुस्कुराए। बोले, उन्होंने वही किया जो अब तक करते आए हैं।

हरियाणा साहित्य अकादमी के विचार सत्र में ज्ञान चतुर्वेदी अर्थवान, आत्मीय, आलोचनात्मक बोले। 'हमेशा की तरह' इसलिए नहीं कह रहा, क्योंकि उनको सम्मुख और समुचित सुनने का यह पहला मौक़ा था। फोन पर प्रसंगवश सरीखी बातें ही हुई थीं बस।

ज्ञान जी की चिंताएँ बहुत गंभीर थीं। उन्होंने सतर्क यह स्पष्ट किया कि व्यंग्य में क्या हो रहा है,क्या होना चाहिए,क्यों हो रहा है, क्यों नहीं हो पा रहा है। मेरे लिए यह सत्र सचमुच ज्ञान -सत्र था। मैं परसाई और श्रीलाल शुक्ल के चिंतन से ज्ञान जी को कोरिलेट कर रहा था। अगर चिंतन की परंपरा होती है तो चिंताओं की भी होती है। ज्ञान जी ने व्यंग्य पाठ भी किया। शानदार।

उस दिन कुछ लोगों (जिसमें मैं भी हूँ) के अलावा यज्ञ शर्मा ने भी व्यंग्य पढ़ा। पढ़ने के शिल्प को लेकर उनकी बहुत ख्याति रही है। मगर उस दिन वे अपेक्षाकृत असरहीन रहे। संभव है अस्वस्थ भी रहे हों। यज्ञ जी से यह पहली मुलाक़ात रही। बाद में फोन पर कई बार चर्चा हुई। एक प्रसंग याद आया। हालाँकि भुला देने योग्य है।

मैं एक पत्रिका के लिए यज्ञ जी की रचनाओं पर किसी से समेकित लेख लिखवाना चाहता था। किताबों की समस्या आई। उन्होंने हिंदी भवन, दिल्ली के पुस्तकालय में कहकर मुझे किताबें सुलभ कराईं। ये किताबें मैंने एक मित्र को सौंपी कि लेख लिख देना। दोस्त से कहते-कहते जब मेरी प्रतीक्षा का प्रसून तड़बड़ाने लगा....तब लगा कि इनसे से न हो सकेगा। दोस्त ने सुझाव दिया कि क्यों न 'किसी और' से लिखवा लिया जाए। ठीक। उनसे से कहा कि ये किताबें उन अन्य को दे दो। दोस्त भी शायद मुक्ति चाहते थे। अगली साँस में बोले हाँ। वह अच्छा लिख देगा।

मैंने कई बार दोस्त को फोन-शोन किया। मगर दोस्त के अन्य ने इस काम को 'इत्यादि' में डाल दिया। मैंने मुंबई की एक लेखिका मधु अरोड़ा से यज्ञ जी का साक्षात्कार करवाया था। लेख न मिलने की हालत में पूरा विचार ध्वस्त हो गया। उनका साक्षात्कार मुंबई की एक पत्रिका कथाबिंब में में छपवाया गया। दिलचस्प यह कि लेख तो लिखा न जा सका, किताबें भी वापस मिलने में विलंब होने लगा। हिंदी भवन से बार-बार फोन आने लगा कि किताबें वापस कर दीजिए। संकट दोस्त ने पैदा किया था। वही संकटमोचन बने। अन्य से किताबें लीं। फिर कोरियर किया। ...तब वापस किया और धुआँ दे रहा लेख- यज्ञ पूरा हुआ।

पंचकूला में ही एक घटना और हुई। कार्यक्रम की अगली सुबह ज्ञान जी हमारे कमरे में आए। कि यार वहाँ अकेले बहुत अजीब सा लग रहा है। मैंने उनसे कहा कि आइए बैठिए। वहाँ प्रेम जनमेजय, लीलाधर जगूड़ी आदि थे। मैं कुर्सी खींचकर बैठने लगा कि ज्ञान जी ने इशारा करते हुए कहा, अरे सुशील जी, इधर आके बैठिए। मैं संकोच करते हुए उनके बराबर जाकर बैठ गया। उस मौके का एक चित्र भी है जिसमें ज्ञान जी, प्रेम जी और मैं साथ साथ बैठे हैं।

वहाँ एक बात और हुई। मैं श्रद्धावश ज्ञान जी के पैर छूना चाहता था। हो सकता है मेरे मन में यह भी हो कि पैर छूना साहित्य में लिखने पढ़ने जैसा ही एक ज़रूरी काम है। बल्कि पैर छूने का संप्रेषण ठीक से होने लगे तो लेखन में संप्रेषण का सवाल गौंण हो जाता है। बहरहाल, मुझे लगा कि ज्ञान जी बड़े लेखक तो हैं ही, ब्राह्मण भी हैं। इनके पैर छूने को संस्कृति की अनुमति भी प्राप्त है। याद आया कि मैंने लखनऊ में एक आदरणीय लेखक को सलीक़े से प्रणाम कर लिया था, बाद में एक अन्य स्मरणीय लेखक ने मुझे बहुत सलीक़े से लताड़ा था। कि बाँभन होकर लाला के पैर छूते हो। मैं रिरियाया था, कि वे बड़े लेखक हैं। स्मरणीय लेखक अविस्मरणीय तरीके से दहाड़े थे। लेखक-फेखक ठीक है...मगर जाति भी कोई चीज़ होती है कि नहीं। मैं जब रुआँसा हो गया तब उन्होंने दिलासा दिया था, ठीक है मन नहीं मानता है तो छू लिया करो। मगर एकांत में। लेखक लेखिका अकेले में पैर वगैरह चाहे जो छू-छा लें। यह तो चलता है। इससे सामाजिक मर्यादा भी बनी रहती है और साहित्यिक आत्मीयता भी कायम रहती है।

बहरहाल,मैंने जब ज्ञान जी के पैर छूने चाहे तो वे संकोच से बोले, अरे अरे ठीक है। आराम से बैठिए।

मैं बेचैन हो गया। ये कैसे लेखक हैं! वरना मैंने तो ऐसे ऐसे लेखक देखे हैं कि जिनके पैर न छुएँ तो बेचैन होकर अपने पैरों को बार-बार देखने लगते हैं। जैसे कह रहे हों कि भरोसा नहीं रहा ये मेरे ही पैर हैं! अब तक ढाई सौ ग्राम प्रणाम भी नहीं आया। फिर वे पैर अदलने-बदलने लगते हैं। जैसे तलवों में कोई कंकर चुभ रहा हो। तब आपको लगता है कि प्रणाम न करवा पाने का कंकर वहाँ चुभ रहा है।

ज्ञान चतुर्वेदी एक भिन्न तरह के लेखक हैं, उस दिन मुझे भरोसा हो गया था। उनकी भिन्नता का बोध सबको है।

ज्ञान जी की इसी आत्मीयता के चलते उनके साथ एक अजब रिश्ता बन गया था। हकीकत तो यह है कि पंचकूला से वापस

आया था तो मेरा मन उदास था। मन में थोड़ा सा उल्लास भी था। उदास इसलिए कि ज्ञान चतुर्वेदी से ठीक से बात न हो सकी थी। उल्लसित इसलिए था कि चलो मुलाक़ात तो हो गई। सोच रहा था कि अगर उन तक पहले 'नारद की चिंता' पहुँच गई होती तो शायद बात करने के लिए कोई कारण भी मिल गया होता। ...वैसे ज्ञान जी से बात अकारण भी हो सकती है। वे बेहद सहृदय व्यक्ति हैं।

कई बार लेखक औपचारिकताओं में इतना और इतना हृदय निकाल कर रख देता है कि उसके वक्ष के भीतर ख़ून साफ़ करने वाला एक लोहित लोथड़ा ही बच रहता है।

एक बात और है। यह मैंने अपने अनुभव से जाना कि ज्ञान जी जिस आयोजन में जाते हैं वहाँ बहुत व्यस्त रहते हैं। उन पर आयोजक का एक अदृश्य प्रोटोकॉल-सा रहता है। यह बात दीगर है कि ज्ञान जी इंतज़ार करते हैं कि कोई आए और किसी बात का सिरा भी हाथ में आए । मिलने वाले मौका निकालें, इससे पेशतर वे अवसर बनाते रहते हैं। प्रोटोकॉल को नष्ट करना उनका शेवा है...वे औपचारिकताओं से ऊब जाते हैं। अब तो अशांत और असंतुष्ट भी होने लग जाते हैं। बरसों से वही कर्मकांड। कि--'ख़ुशी की बात कि हमारे बीच ज्ञान चतुर्वेदी...। कि अब वे आएँ और जो सवाल पूर्व वक्ताओं ने उठाए हैं उनका उत्तर दें। कि अब ये...। कि अब वो...।'

लेकिन संवाद करना उनका स्वभाव है। यह स्वभाव उनकी रचनाओं में उतरा है। उनका लेखन 'संवदिया' है। संवदिया शीर्षक से रेणु की एक अमर कहानी है। संवदिया यानी किसी की बात, किसी का संवाद...किसी तक ले जाने वाला। ज्ञान जी समय के अनेक आयामों में, संवेदनाओं के कई स्तरों में, विचारों की बहुतेरी प्रक्रियाओं में संवाद बनाते हैं। उनको पढ़ते समय पाठक जैसे पुस्तक में जीवंत घटनाओं और चरित्रों से बातचीत शुरू कर देता है। यह किसी महान लेखक के अनेक लक्षणों में एक है। अन्यथा, वर्तमान व्यंग्य में आलम यह है कि बहुतेरे व्यंग्यक एकालाप कर रहे हैं। कभी कभी प्रायोजित विलाप भी कर रहे हैं। रचना में रोना कोई ग़लत बात नहीं, लेकिन यह भी पता होना चाहिए कि रचना अरण्यरोदन नहीं होती।

'ज्ञान तो बस ज्ञान है। काश मुझे उस तरह लिखना आता।' यह उत्तर दिया था एक वरिष्ठ और शालीन लेखक ने। उत्तर देने के बाद गद्गद् भाव से वे फुसफुसाए थे...ज्ञानू तो बस।

यह मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं था। मैंने उनसे जानना चाहा था कि हिंदी व्यंग्य में ज्ञान चतुर्वेदी के लेखन का क्या वैशिष्ट्य है! उनके यह उत्तर देने के बाद भी मैंने शब्द बदल-बदल कर अपना सवाल दोहराया। वे अपने लेखन में कितने ही कच्चे हों,अपनी बात के बहुत पक्के निकले। हर बार यही बोले कि ज्ञानू तो बस...। इसके आगे उनके बस में कुछ था भी नहीं। और न है।

तबसे लगभग नौ साल बीत गए, वे यह न बता सके हैं कि लेखक के रूप ज्ञान चतुर्वेदी क्या हैं। मुझे भी इस खेल में आनंद आने लगा है। मेरा सवाल वही है। जब वे मिलते हैं तो पहला मौक़ा मिलते ही सवाल पूछ लेता हूँ। अब हालत यह हो गई है कि मिलने पर मेरे सवाल करने से पहले ही वे 'ज्ञानू तो बस' के भावबोध में प्रवेश कर जाते हैं।

उनको देखकर लगता है कि चतुराई एक गुफा है, जिसका मुहाना प्रशंसा के भारी पत्थर से तोप दिया गया है। अद्भुत है यह अनुभव। वही मुँह, वही भंग-भंग होती भंगिमा। वही गोलमोल बोलवचन। वही अबुद्धि मैं, वही सबुद्धि वे। न उनको सद्बुद्धि, न मुझे।

...ऐसे मौक़ों पर मुझे हर क्षण याद आते रहे श्रीलाल शुक्ल। बहुत पहले की बात है। उन दिनों वे 'बारामासी' की गिरफ़्त में थे। हर किसी से यही चर्चा करते थे कि यह होता है लेखन। मेरे पत्रकार लेखक मित्र रौशन प्रेमयोगी ने उनसे ही बारामासी की प्रति प्राप्त की थी। पढ़ने के बाद रौशन ने ख़ुद को 'ज्ञान सेना' के सेनापति पद पर नियुक्त कर लिया था। उन्होंने बारामासी पर कई जगह लिखा था। बातचीत में भी इस उपन्यास के गुण गाते थे। कोई टोक भर दे तो शब्दशः उस पर चढ़ बैठते थे। समझाने का उनका यह अपना मौलिक और मुकम्मल तरीका था। आज भी है।

उन्हीं दिनों श्रीलाल जी से मैंने पूछा था कि,ज्ञान चतुर्वेदी के बारे में कुछ बताइए। श्रीलाल जी धीरे से बोले थे, 'पहले आप यह बताइए कि ज्ञान चतुर्वेदी को कुछ पढ़ा वढ़ा है। ताकि मैं जान सकूँ कि मैं जो कहूँगा उसे समझने की योग्यता आप में है कि नहीं।...योग्यता बड़ा शब्द है,आपमें पात्रता है कि नहीं।'

...ज्ञान जी को समझना आसान नहीं है। वे हर समय लेखन और लेखन से जुड़े चिंतन में डूबे रहने वाले व्यक्ति हैं। उनसे कभी भी बात करो तो कुछ देर के बाद उनकी चिंताएँ मुखर हो जाती हैं।

उसी दिन का वाक़या याद करूँ तो फोन पर ज्ञान चतुर्वेदी की आवाज़ थोड़ी सी लाउड हो गई, 'बात करने का शायद कोई फ़ायदा नहीं है। जो जिस तरह से लिख रहा है, लिखता रहेगा। कुछ लोगों ने अपनी पहली रचना जिस तरह लिखी होगी उसी तरह आज भी लिख रहे हैं। वे चल नहीं रहे, एक ही जगह क़दमताल कर रहे। क्या इसको लेखन की यात्रा कह सकते हैं? सुशील, रचना एक कौंध है। देखो। आप चीज़ों से गुज़रते हो। अचानक कुछ कौंध जाता है। स्मृति इसे धरोहर की तरह सहेज लेती है। बाद में यह सब लिखने का कारण बनता है। हो यह रहा है कि समय गुज़र रहा, चीज़ों से लोग गुज़र रहे...लेकिन न कोई चमक न कौंध। अब लोग यह कर रहे हैं कि उधार या जुगाड़ की टॉर्च जलाकर अपनी आँखों में घुसेड़ रहे, कि काश कुछ कौंध पैदा हो। यार, इस तरह आँखें तो फूट सकती हैं, दृष्टि नहीं मिलेगी। इस तरह आप बहुत छोटी-छोटी बातों में उलझ जाते हो। बेसिक आदमीयत भी खो देते हो। दूसरों को नसीहत देने की सनक पाल लेते हो। सबको गंदा, झूठा, फ़रेबी बताने की मुहिम छेड़ देते हो। यह देखकर तकलीफ़ होती है। ...अब क्या कहूँ तुमसे!! साहित्य में आकर शब्द वही नहीं रहता जो बाहर था। इसे समझना होगा। यार, लोग समझने को तैयार नहीं हैं।'

...ज्ञान जी फोन पर बात करते हुए उस

दिन बहुत संवेदनशील हो रहे थे। यह संवेदनशीलता उनकी पहचान है। वे अपनी बात के भी पक्के हैं। घनघोर व्यस्तता के चलते हो सकता है कमिटमेंट पूरा करने में आगा पीछा हो जाए पर वे पूरा करते हैं।

मैं किताबघर प्रकाशन के लिए उनका एक संग्रह लेना चाहता था। पीछा करता रहा। ज्ञान जी तैयार हुए। और रंदा नाम से संग्रह आया। भूमिका में उन्होंने लिखा, 'एक आखिरी बात। सुशील सिद्धार्थ न होते, वे मेरे पीछे न लगते तो मेरे जैसा आलसी आदमी यह संग्रह तैयार न कर पाता। वे मित्र और संपादक--दोनों के तौर पर अद्भुत हैं। उन्हें धन्यवाद।' ज़ाहिर है, यह उनका स्नेह है। ...इसी संग्रह से जुड़ी एक घटना याद आ गई। किताब छपने के बाद ही विश्व पुस्तक मेला लग रहा था। हमारा मन हुआ कि इसका लोकार्पण मेला में हो। ज्ञान जी को फोन किया। वे हँसे। यार आज तक मैंने अपनी किसी किताब का लोकार्पण नहीं कराया है। ये बताओ, इस मौके पर किताब और लेखक के साथ क्या-क्या होता है! अब हँसने की बारी मेरी थी। बहरहाल, मैंने उनको कन्विंस किया कि आपके लिए न सही पर प्रकाशन के लिए यह फायदेमंद होगा। वे तैयार हो गए। मैं सोचता रहा, यार लोग तो विश्व पुस्तक मेला में लोकार्पण के लिए मरे जा रहे हैं। प्रकाशकों पर दबाव डाल रहे हैं कि भई, ले ही आओ। लेखक भीषण मानसिक तनाव में हैं कि मेला में किताब न आई तो क्या होगा। ऐसा लगता है कि उस माहौल में किताब की पन्नी न उतरी तो इज़्ज़त का पानी उतर जाएगा। लेखक के घर वाले मारे डर के सहमे सहमे हैं। कि न आई तो! रक्तचाप की दवाई बढ़ गई है। आलूचाप की दावत कम हो गई है। मित्र चुटकी ले रहे हैं कि गुरू उनकी तो आ रही है, तुम्हारी? लेखक महानता के शिखर पर चढ़कर जवाब देता है, देखो मैंने लिख दिया। अब किताब कब आती है मुझे इस बात में कोई रुचि नहीं। ....शिखर पर कनेक्टिविटी कम है इसलिए शिखर से उतरते ही लेखक तार जोड़ता है और अपने प्रकाशक पर प्रकाश डालता है कि भई आ रही है ना!

व्यंग्य में तो स्थिति और भी संवेदनशील है। सुनते हैं एक व्यंग्यकार को प्रकाशक ने अल्टीमेटम दिया कि अमुक तारीख तक दे दो, वरना मैं नहीं दे पाऊँगा। बताते हैं कि व्यंग्यकार ने वैसे रचनात्मक प्रेशर के साथ काम किया जिस तरह के प्रेशर के साथ कोई मूत्रालय या मलालय तक भागता है। उस लेखक ने ज़ोर लगाया और दी गई तारीख़ तक निवृत्त हुआ। आश्चर्य नहीं कि उस किताब पर चंद समीक्षाएँ भी इस तरह आईं मानो मल-मूत्र की जाँच की जा रही हो! विश्व पुस्तक मेला का लोकार्पण है ही ऐसा!

लेखक सोचता है कि लेखक मंच क्या सूना चला जाएगा? फोटो न खिंचेगी तो फेसबुक विधवा हो जाएगी। आह लोकार्पण तुम कहाँ हो ? कश्मीर से कन्याकुमारी तक अटक से कटक तक केवल एक शब्द गूँज रहा है लोकार्पण!

ऐसे अद्भुत प्रेशरपूर्ण माहौल में ज्ञान चतुर्वेदी का लोकार्पण के प्रति यह विराग भाव चकित करता था।

तो ज्ञान जी का कार्यक्रम फेसबुक, वाट्सैप आदि मंचों पर घोषित कर दिया गया। इन माध्यमों के ज़रिए काफ़ी नए लोग संपर्क में आए थे, वे भी उत्साहित थे। कि ज्ञान चतुर्वेदी से मुलाक़ात होगी। ...इसलिए जब ज्ञान जी ने फोन पर कहा कि तुमसे एक सलाह लेनी है,तब ख़ुशी भी हुई कि चलो इतना बड़ा लेखक मुझसे सलाह चाहता है।

लेकिन जब उन्होंने सलाह्य मुद्दा बताया तो मैं चिंता में पड़ गया। हुआ यह था कि ज्ञान जी का कार्यक्रम जानकारी में आते ही उनकी व्यस्तताओं में इजाफा करने की होड़ लग गई, कि अब आ रहे हैं, उपलब्ध ही हैं तो लाभ लिया जाए। इसी क्रम में विश्व पुस्तक मेला में उनका एक कार्यक्रम प्रस्तावित हुआ। शायद प्रेम जनमेजय का था। व्यंग्य की तीन पीढ़ियाँ, ऐसा कुछ। समय वही। जो किताबघर प्रकाशन के स्टाल पर रंदा के लोकार्पण का।

तीन पीढ़ियाँ वाले कार्यक्रम पर बाद में व्यंग्यकार सुरेश कांत ने फेसबुक पर लिखा था। प्रसंगवश याद आ गया-

'कल पुस्तक-मेले में जाने का मौका मिला। भाई प्रेम जनमेजय द्वारा अपनी पत्रिका 'व्यंग्य-यात्रा' के तत्त्वावधान में आयोजित 'तीन पीढ़ियों के बीच संवाद' में। वहाँ नई पीढ़ी पर कुछ आरोप लगे, तो प्रत्युत्तर में मैंने अपनी ही पीढ़ी से कुछ सवाल पूछ लिए। इस पर खुद को इस पीढ़ी के अगुआ समझने वाले और इस तरह पूरी पीढ़ी का अगवा कर लेने वाले प्रेम भाई इतने नाराज़ हुए कि मुझे अपनी पीढ़ी से ही बहिष्कृत कर दिया। पता नहीं किस पैमाने के तहत? जबकि 1978 में जब उनका पहला व्यंग्य-संकलन छपा था, तब मेरा व्यंग्य-उपन्यास 'ब से बैंक' उस समय की सबसे सम्मानित पत्रिका 'धर्मयुग' में छप रहा था जो 1980 के पुस्तक-मेले में पुस्तकाकार छपकर आया। तो क्या पीढ़ियों का निर्धारण सिर्फ इस बात से होता है कि आप लिखना छोड़ उठाईगीरी (पुरस्कार आदि उठाने के लिए किसी भी हद तक गिरना) करने लगे, और मैं वह रास्ता अख़्तियार न कर लिखते रहने के ही मार्ग पर डटा हूँ?

आदरणीय नरेंद्र कोहली का अध्यक्षीय समाहार इस कथित व्यंग्य-संवाद की परम उपलब्धि रहा। आहा, क्या बोलते हैं वे! प्रेम के संचालन से उनके समाहार तक का पूरा दौर 'आह से आहा तक' का दौर रहा। व्यंग्य-जगत के लिए उस व्यंग्य-संवाद पर मैं विस्तार से यथासमय लिखूँगा। फिलहाल मैं प्रेम भाई को हृदय से धन्यवाद देता हूँ परिचर्चा में आमंत्रित करने के लिए और आशा करता हूँ कि अपने अगले कार्यक्रमों में वे मुझे नहीं बुलाएँगे। लेकिन उससे क्या होगा? सवाल तो वहीं के वहीं खड़े रहेंगे। बल्कि और सवाल खड़े हो जाएँगे। मैं ही तो जवाब हूँ उन सवालों का। बहुत किया, अब और अनदेखा नहीं कर सकेंगे आप

मुझे। और मेरे साथ नई पीढ़ी के समर्थ लेखकों को भी। क्योंकि हम लिख रहे हैं। और जो लिखेगा, वही बचेगा।'

इस उद्धरण का भीतरी रण तो व्यंग्य के रणबाँकुरे जानें। लेकिन मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि सुरेश कांत ऐसे व्यंग्य लेखक हैं, जो आपसे बहस करने के बाद (भी) आपका सम्मान करते हैं। बहस को दिल पर लेकर दिमाग से यह नहीं कहते कि बेटा! लग जा काम पर। और लगा दे काम!

मेरे और सुरेश जी के बीच जैसी भीषण बहसें होती हैं उनकी कल्पना करना भी कठिन है। लेकिन इससे हमारे संबंधों पर कोई असर नहीं आया। ऐसे लेखक को पढ़ना सुनना यहाँ तक कि उससे झगड़ना भी एक अनुभव है। सुरेश जी स्वभाव से ख़ुशदिल, साफगोईपसंद, कथात्मक हैं। उन्होंने हिंदी व्यंग्य को बहुत समृद्ध किया है। रचनात्मक और आलोचनात्मक, दोनों तरह से। उनमें आलोचना और विश्लेषण की जो ग़ज़ब सलाहियत है वह उनकी किताब 'चुनाव मैदान में बंदूकसिंह' की भूमिका में ज़ाहिर है।

..एक बार मैंने उनपर फेसबुक पर कुछ लिखा था तो उनका जवाब था, 'धन्यवाद सुशील भाई। मैं आगे पढ़ने के लिए भी उत्सुक हूँ। और हाँ, बहस से संबंध खराब उनके होते हैं, जो यह समझकर लिखते हैं कि जो वे लिख रहे हैं, वह अंतिम है और अब हरेक को उससे सहमति ही जतानी चाहिए, और जो सहमति न जताए, वह कैसा मित्र और उससे कैसा संबंध?

इसके विपरीत मैं तो यह सोचकर लिखता या बोलता हूँ कि ऐसा मुझे लगा। वह ग़लत भी हो सकता है और अगर कोई तथ्यों व तर्कों के साथ ध्यान दिलाए, तो मैं अपने को सुधार भी सकता हूँ। आख़िर मैं भी किसी से असहमत होकर ही कुछ नया अथवा भिन्न कह रहा होता हूँ और कोई मुझसे असहमत होकर भी कुछ नया अथवा भिन्न कह सकता है। इसमें संबंध खराब क्यों हो जाने चाहिए?

हाँ, जो संबंध सहमति की अनिवार्य शर्त पर ही बनते हों, वे अवश्य खराब हो जाएँगे। लेकिन ऐसे संबंध क्या संबंध ही होते हैं?

अच्छे से अच्छे लेखन में कुछ कमी रह गई हो सकती है, जिस पर किसी दूसरे व्यक्ति की नज़र पड़ती है। वह दूसरा व्यक्ति पहले व्यक्ति से सहानुभूति रखते हुए इस आशय से उस कमी की तरफ ध्यान आकर्षित करता है कि पहला व्यक्ति उसे आगे सुधार सके। समीक्षा का यही प्रयोजन है। इसलिए समीक्षक लेखक का सबसे बड़ा हितैषी होता है, बशर्ते वह समीक्षक हो, यानी समदर्शी और सम्यक दर्शी। और समीक्षक यदि उसी विधा का अच्छा लेखक भी हो, तो क्या कहने! इसलिए आप लिखिए। बेहिचक और बेलाग। हम साबित करेंगे कि बहसों से संबंध प्रगाढ़ भी हो सकते हैं।'

बहरहाल, समय वही। अब मैं पसोपेश में। प्रेम जी के प्रति आदर और नौकरी की प्रतिबद्धता! क्या कहूँ ज्ञान जी से। फिर मेरी प्रतिबद्धता जीती। मैंने ज्ञान जी से कहा कि हमारा कार्यक्रम पहले से तय है। आप ने वचन भी दिया है। मैं चाहूँगा कि आप पहले किताबघर प्रकाशन पर आइए। लोकार्पण के बाद वहाँ चले जाइएगा। ज्ञान जी बोले कि ठीक। यही होना भी चाहिए।

जिस शाम उनको मेला में आना था, हमने बहुत से साहित्य प्रेमियों को बुला रखा था। सबको इंतज़ार था। तीन पीढ़ियाँ का कार्यक्रम भी उसी हॉल में था। उसके शुरू होने की आवाज़ आ रही थी। मैं ज्ञान जी को रिसीव करने के लिए तैयार, हॉल की सीढ़ियों के पास। बाकी अनेक व्यंग्यकार और अनेक से कुछ कम व्यंग्य प्रशिक्षु पीढ़ियों के पास। तभी, ज्ञान जी की आवाज़ मोबाइल पर आई। मैं लपका। ज्ञान जी को दूर से आता देख मन खिल गया। ज्ञान जी के व्यक्तित्त्व में कुछ ऐसा है जो बेहद आत्मीय और उदात्त है। सेल्फ़ी ली। और कहा कि एक इतिहास बन रहा है।

(अगले अंक में जारी)

❐❐❐

किताबघर प्रकाशन, 4855-56/24
अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली 110002,
मोबाइल 9868076182

## लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें। कृपया रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद
-संपादक
shivna.prakashan@gmail.com

कहानी

# नीला.....नहीं शीला आकाश

अमिय बिन्दु

घर की मुँडेर पर बैठकर सुबह ने बड़ी जोर की बाँग लगाई थी।

रात के गुजरते जाने की मंथर गति आकाश की आँखों में आशंका बनकर टँगी थी। उसकी स्याही आँखों में साफ नज़र आ रही थी। रात के बीत जाने में अभी बहुत समय बाकी था, ऐसा आकाश को महसूस हुआ। वह उधेड़बुन में लगा हुआ था। बच्चे मान गए थे। रह रहकर उसे आशंका होने लगती। बच्चे तो भावुक होते हैं। अभी बहुत कोमल भी हैं। उसने सही किया या नहीं? बच्चों ने उस पर दया तो नहीं दिखाई? वह बहुत कमज़ोर तो नहीं? किचन में खड़े खड़े वह यही सोच रहा था। उसने घड़ी की ओर देखा। समय घड़ी में कहाँ होता है? उसने कॅलेण्डर देखा, समय तारीख़ों से भी परे निकल चुका था। समय तो पसरा हुआ था काले से स्लेटी होते जा रहे उसके बालों में। समय पसरा था दो फीट से पाँच फीट के हो गए मिथक के अंगों में। समय पसरा हुआ था छोटी सी बच्ची से इंजीनियरिंग का स्टूडेण्ट बन चुकी मानसी के सपनों में।

शीला अभी भी सहज नहीं थी। मिथक और मानसी से घिरी हुई सोफे में धँसी बैठी थी। आकाश कॉफी का मग लिए सामने आकर खड़े हो गए थे। बिना आकाश की ओर देखे उसने पूछ लिया, 'कल ऑफ़िस जाओगे क्या?' शीला की आवाज़ में कँपकँपाहट साफ दिख रही थी। आकाश तक पहुँचते-पहुँचते उसके शब्द थिर हो चुके थे। शीला ने नज़र भी घुमा ली थी। झट से कॉफी का मग थामते हुए सोफे के कोने में सिमट गई। 'हफ्ते भर की छुट्टी के लिए बोल दिया है।' आकाश ने थिर हो चुके शब्दों को वापस उसकी ओर मोड़ दिया।

शीला कॉफी के स्वाद को नथुनों से महसूस कर रही थी। बिल्कुल वही स्वाद। कम दूध में घुली हुई ढेर सारी कॉफी। चौदह साल बाद भी वही झन्नाटेदार कॉफी। कहीं वह यादों की क़ैदी तो नहीं? सोचते हुए उसने खुद को और भी समेट लिया। आकाश भी सोफे पर बैठ चुका था। शीला ने कॉफी सिप की। जीभ ने भी वही सूचना दी। दिमाग के तंतु उसी तरह उत्तेजित हुए। उसने सिर हिलाकर खुद के लिए हामी भरी।

काफी के स्वाद से आश्वस्त आकाश, शीला के साथ की खुशबू में डूबा था। वह इतने बरसों तक शीला से दूर कैसे रह सका? उसे यक़ीन नहीं हो रहा था। चौदह बरस की दूरी कम नहीं होती। तकनीक के बल से भागती दुनिया में चौदह साल में सब कुछ बदल जाता है। बहुत कुछ पुराना होकर बेकार हो जाता है। कुछ चीज़ें तो विलुप्त ही हो गईं। उसने अपनी हथेलियों को खोलकर देखा कि उसने समय को करीने से सहेज रखा था। दिन को हफ्तों में, हफ्तों को महीनों में और महीनों को बरसों में बदल बदलकर। यादों के बड़े से गुल्लक में उसने समय के चिल्लर जुटाए थे। सोचता था जब मन होगा गुल्लक फोड़कर उन लम्हों को निकाल लेगा और मन बहलाया करेगा। आज शीला सामने है, उसके साथ है लेकिन समय कहाँ रहा? गुल्लक से चिल्लर गायब हो गए थे। वे खुशबू बनकर मन में समा गए थे। यादों के गुल्लक के मुहाने पर भी पतला सा सुराख होता है। उसी सुराख से कहीं दूर से रोशनी भरती जा रही थी।

आकाश की ब्याहता बनकर आई थी शीला इस घर में। अपने माँ बाप का इकलौता आकाश। खूब ऐश करेगी। सास-ससुर की खूब सेवा करेगी। यही सोचा था पहले-पहल। छोटा सा संसार होगा। जब मन होगा अपने उस भरे पूरे संसार का चक्कर लगा आया करेगी। बचपन की वह बात याद आ जाती जब उससे मम्मी पूछती थी, 'क्या बनेगी बड़ी होकर?' और वह 'चिड़िया बनूँगी।' कहकर खिलखिलाकर हँस देती थी। मम्मी पूछती 'चिड़िया बनकर क्या करेगी?' तो आँखें मटकाती और हाथ फैलाकर बताती 'पूरी दुनिया घूम आऊँगी।' जब आकाश से रिश्ते की बात चली तो वह रोज शिव मंदिर जाती और उनसे मन ही मन कहती कि रिश्ता पक्का करा दे। शिवजी ने सुन भी ली।

बहू बनकर घर में कदम रखा तो उसे विश्वास नहीं हो रहा था। पढ़ाई के सिवाय और कोई योग्यता न थी, जो उसे आकाश के बराबर कहीं भी खड़ा करती। पापा बिजली विभाग में साधारण से कर्मचारी थे। तिस पर ईमानदार भी। उसे भरोसा भी न था कि उसका रिश्ता कहीं अच्छे से हो पाएगा। उसके सपनों में भी कभी किसी राजकुमार को जगह नहीं मिली थी। वह अपने सपनों में खुद राजकुमार थी। सफेद घोड़े पर सवार, हवा से बातें करते हुए, मुक्त आकाश में उड़ते हुए। नदिया, पहाड़, समंदर न जाने क्या-क्या पार करते हुए। संगमरमर जड़े फर्श पर कदम रखते उसे झिझक हुई थी। कुछ ही दिनों में वह आकाश में उड़ने लगी। बचपन का सपना सच होने लगा। पति गज़टेड अफसर वह भी दिल्ली जैसे शहर में। कुछ दिनों बाद सास-ससुर से विदा लेकर केवल आकाश के पहलू में आ गिरी।

समय इतनी तेजी से उड़ने लगा कि उसे इस चौथे आयाम से भरोसा उठ गया। साइंस की स्टूडेण्ट होने के बावजूद वह सोच नहीं पा रही थी कि आख़िर समय कहाँ ग़ायब होता जा रहा था।

दो साल बाद उसके उड़ानों पर रोक लग गई। सपनों ने अपना पहरा बिठा दिया। एक फूल उसके गर्भ में पलने लगा था। वह तैयार नहीं थी उसके लिए। लेकिन उसे इंकार भी नहीं था। उसे अचंभों से प्यार था। एक नई दुनिया को देखने का रोमांच मन में भर लिया और खुद को समय के झूले में छोड़ दिया। उसे पहली बार झटका लगा था कि मुक्त गगन में उड़ने का कुछ तो उद्देश्य हो? वह अपनी प्यास तलाशने लगी, उसे पहचानने लगी। एक दिन आकाश से कहा था उसने, 'आकाश मैं भी नौकरी करना चाहती थी।' आकाश ने कोई रुकावट नहीं डाली। आकाश रोकता भी कहाँ है किसी को 'थी क्या अब नहीं चाहती हो?'

'नहीं मेरा मतलब है कि मेरा मन हो रहा है'

–रोका किसने है?

–तुम्हें दिक़्क़त तो नहीं होगी?

–बिल्कुल नहीं। मैंने तो खुद सोच रखा था कि तुम्हें दिल्ली का माहौल मिलेगा तो तुम अपनी पढ़ाई का पूरा यूज़ कर पाओगी।

–तुम बहुत अच्छे हो आकाश।

आकाश ने उसे गले लगा लिया था। उड़ान पर पहरा उसके लिए नई उड़ान की तैयारी का कारण बन गया। जितने दिन वह घर पर रही पढ़ती रही। मानसी के पैदा होने के दो साल बाद उसे मिल गई नौकरी। वह साइंटिस्ट बन गई। उसे भरोसा ही नहीं होता था कि सपने ऐसे भी पूरे हो जाते हैं। इतनी आसानी से।

धूप खिली हुई थी। शीला भी खिली खिली थी। कितना तो समय बीत चुका था। ऑफिस के बाहर लॉन में बैठकर वह सपनों का हिसाब लगा रही थी। उसे मज़ा नहीं आ रहा था। ऑफिस के कामों से वह फिर से ऊबने लगी थी। नौकरी में रोमांच नहीं मिल रहा था। बिल्कुल सीधी-साधी सपाट नौकरी। कहने को साइंटिस्ट थी लेकिन साइंटिस्टों वाला जुनून नहीं था। उसके ऑफिस में साइंटिस्ट एक पोस्ट भर था। क्लर्क की तरह रोज़मर्रा की फाइलें निबटाओ और तनख़्वाह लेकर जाओ। उसे काम का जुनून सवार था लेकिन ऑफिस में लोग केकड़े की तरह एक दूसरे की टाँग खींचने में अधिक व्यस्त थे। न खुद काम करते न दूसरे को करने देते।

मानसी छः साल की हो गई थी। दोनों टूर पर थे। देश के बीचों-बीच कर्क रेखा के बिल्कुल नीचे खड़े होकर आकाश ने कहा था, 'देखो दूर दूर तक फैला हुआ नीला आसमान।' शीला बहुत उल्लास में थी, 'नहीं...नीला नहीं शीला-आकाश। हम और भी दूर-दूर तक फैल जाएँगे कभी। देखना किसी दिन।' कहते हुए उसने आकाश को बाहों में भर लिया। उस टूर ने मानसी के अकेलेपन को दूर करने का इंतजाम कर दिया। आदर्श परिवार हो जाने में यही एक कसर बाकी थी। शीला फिर से दूसरे सपनों में उड़ान भरने लगी थी। धीरे-धीरे समय नज़दीक आने लगा तो छुट्टी लेकर घर बैठ गई। ऑफिस में बहुत काम नहीं था। अभी भी समय शीला के साथ था और मिथक का जन्म हुआ तो उसे अपना जहाँ मुकम्मल नज़र आने लगा। हम दो हमारे दो। सास, ससुर, माँ, बाप। सब कुछ पूरा हो चुका था। अब ज़िंदगी को आराम से जिया जा सकता था। यही आराम मन की सबसे बड़ी उलझन बन जानी थी।

डिलीवरी के चार महीने बाद ऑफिस से छुट्टी रद्द होने का पत्र आ गया, 'प्लीज़ रिपोर्ट विदिन ए वीक'। इंटरनेशनल प्रोजेक्ट मिला था लैब को। बॉटनी का प्रोजेक्ट था। शीला का विषय बॉटनी ही था। स्वयं डाइरेक्टर श्रीनिवासन प्रोजेक्ट लीडर थे। टीम में शीला की अहम भूमिका रहनी थी। प्रोजेक्ट को तय समय के अन्दर पूरा करने की ज़िम्मेदारी थी। शीला को लगा था कि उसके नीरस हो रहे जीवन में कुछ चिंगारी दिखी है। वह मना नहीं कर सकी, 'आकाश, बहुत बड़ा प्रोजेक्ट है। सफल हो गया तो हमारे गाँवों का कायाकल्प हो जाएगा।'

ऑफिस के माहौल में कॉलेज की रंगत घुस आई थी। या कहें कि कॉलेज का कैंपस बढ़ते-बढ़ते ऑफिस तक आ पहुँचा था। पढ़ाई करते समय भी कॉलेज लैब में रुकना। देर तक एक्सपेरीमेंट करना। ऑब्ज़र्व करना। रीडिंग लेना। एनलिसिस करना। यही सब उसके शगल हुआ करते थे। इसमें वह खो जाती थी। ऑफिस में भी वह खोती चली गई। शुरुआत में वह देर रात तक नहीं रुक पाती थी। मिथक को उसकी ज़रूरत रहती थी। प्रोजेक्ट शुरू हुए कुछ महीने बीत चुके थे जब एक दिन इन्स्ट्रूमेंट को सेट कर एक दो आब्ज़र्वेशन करने के बाद वह घर निकलने लगी, 'सर, रीडिंग सही आ रहे हैं। रात भर चलता रहेगा। प्लीज़ सर आप देख लीजिएगा।' श्रीनिवासन ने हँसते हुए कहा, 'काफी इंपोर्टेंट ऑब्जर्वेशन है। रुक जाती तो अच्छा था। नहीं, चाहो तो एक बार घर होकर आ जाओ। ऑफिस की गाड़ी लेकर चली जाओ।'

शीला लोगों की अपेक्षाओं से दो कदम आगे बढ़कर निर्णय लेती थी। उसने आकाश को फोन किया। उसे समझा दिया और बोल दिया कि आज रात नहीं आ सकेगी। वह पहली रात थी जब वह श्रीनिवासन के साथ रात भर लैब में रुकी रही। श्रीनिवासन उम्र में बीस बरस बड़े थे। लम्बा चेहरा, गहरा गेहुँआ रंग, हल्की दाढ़ी और अधखुली पलकों के बीच झाँकती आँखें। आँखें ऐसे देखतीं जैसे भीतर तक झाँक लेती हों। माथे पर और चेहरे पर चमक। गर्व से दमकता हुआ चेहरा था उनका। शीला को उनके चेहरे में मुकम्मल साइंटिस्ट नज़र आने लगा। जैसा वह बचपन से सोचा करती थी। कि साइंटिस्ट पागल होते हैं, जुनूनी होते हैं। उन्हें फिकर नहीं होती। वे भुलक्कड़ होते हैं। एक-एक कर सब कुछ उसे श्रीनिवासन में दिखने लगा था।

उसी रात जब श्रीनिवासन ने उसका हाथ थामा तो उसे कुछ अजीब नहीं लगा। अंतिम रीडिंग के बाद खुशी से श्रीनिवासन चहक उठे थे। 'वी हॅव डन इट' 'वी गॉट द रीडिंग' 'वी हॅव रिपीटेड द ऑब्जर्वेशन'। शीला खिंचती गई उनकी ओर। उन्होंने उसे कसकर गले लगा लिया। हाथ पकड़ना और गले लगाना बस इतना ही हुआ था उस रात। कुछ भी असामान्य बात नहीं थी। महीनों की मेहनत का रिज़ल्ट मिलने पर इतना स्वाभाविक था।

शीला पर उसके काम का असर नशे की तरह होने लगा। उसकी आँखों में हमेशा एक नशा सा छाया रहता। काम का यह नशा

धीरे-धीरे श्रीनिवासन के प्रति नशे में कैसे और कब बदल गया। शीला को इसकी भनक तक नहीं लगी। उसे उसका हर कदम स्वाभाविक लगता। उसने कोई दौड़ नहीं लगाई थी। श्रीनिवासन ने भी कभी आगे बढ़कर कोई कदम नहीं उठाया था। बस लगातार उसे प्रोत्साहित करते, उसकी प्रशँसा करते और हर कदम उसके साथ खड़े रहते। इतने सीनियर होने के बावजूद एक कलीग की तरह काम करते हुए, मेहनत करते हुए उन्हें देखती तो शीला जोश से भर जाती थी। उनका पूरा व्यक्तित्व उस पर हावी होने लगा। स्टूडेंट लाइफ का जुनून फिर से जगने लगा। रिसर्च करते हुए उसने ऐसा ही जीवन जीने का सपना देखा था। वह सपना जीने लगी थी।

बड़े दिनों से चल रही ऑफिस की अफवाहें और चर्चाएँ साकार रूप धरने लगीं। लगातार साथ रहते हुए, काम करते हुए उसे लगने लगा कि जैसे श्रीनिवासन के लिए ही उसे बनाया गया था। आकाश का साथ उसे समाज द्वारा थोपा हुआ लगने लगा। लगता था श्रीनिवासन के साथ रहकर ही उसकी योग्यता, उसकी ऊर्जा, उसके दिमाग़ का पूरा इस्तेमाल हो सकता है। वह उन्हीं के साथ अपना सेल्फ रियलाइज़ेशन कर सकती है। यह शब्द कब और कैसे उसके मन में आया उसे अब भी याद नहीं, मगर इस विचार ने उसे हर ओर से घेर लिया था। मानसी और मिथक की खिलखिलाहटें उसे बुलातीं मगर उसने एक झटके से अपना मुँह मोड़ लिया। उसे लगा कि वह इन सब चीज़ों के लिए नहीं बनी है। लोग कहते कि शीला ने सुन्दरता और जवानी का नशा दिखाकर श्रीनिवासन को फाँस लिया है। वह जानती थी कि वास्तव में कलप्रिट श्रीनिवासन नहीं बल्कि वह खुद है।

'आकाश तुम फट्टू हो' कहकर जोर से खिलखिलाई थी। 'तुम अपनी पत्नी के साथ भी जबर्दस्ती नहीं कर पाते' वह हँसती हुई गई उस दिन। एक हफ्ते के लिए बाहर जा रही थी। कहीं सुदूर दक्षिण भारत के किसी गाँव में एक्सपेरीमेंट था। आकाश को पता नहीं था कि खिलखिलाती हुई वह शीला अब दूसरी ही शीला थी। उसे यह भी अंदाज़ा तक नहीं था कि यह कदम उसे कितनी दूर तलक ले जाएँगे।

हफ्ते भर के लिए गई शीला के फोन लगातार बन्द मिलने लगे। कभी-कभार फोन लग भी जाता तो अनमनी सी बात करके फोन रख देती। मिथक, मानसी को पूछती और सब ठीक है कहकर रख देती। हफ्ता बीत गया। फोन मिलना एकदम से बन्द हो गया। नंबर स्विच ऑफ की बजाय नाट रीचेबल बताने लगा। शीला भी आकाश की पहुँच में नहीं रह गई थी। ऑफिस से पता करने पर पता चला कि श्रीनिवासन और शीला दोनों केरल गए हैं और अभी लौटे नहीं हैं। दसवाँ दिन था। दरवाज़े पर दस्तक हुई तो आकाश ने दरवाज़ा खोला, 'मिस्टर आकाश?' दरवाज़े पर खड़ी एक प्रौढ़ महिला ने पूछा।

'जी, आप कौन?'

'मैं मिसेज श्रीनिवासन, योर वाइफ.....'

'आइए। अंदर आइए। प्लीज़ कम।' दरवाज़े से हटते हुए आकाश ने उन्हें अंदर आने का रास्ता दिया। वह बीच में चुप हो गई थीं।

'मेरा हिन्दी थोड़ा कमज़ोर है फिर भी कोशिश करता है।'

'कोई बात नहीं मैडम। मुझे अंग्रेज़ी में भी दिक़्क़त नहीं है। आप क्या लेंगी? आप शीला को जानती हैं? कहाँ है वह?' पूछते हुए आकाश चुप हो गया। उसे लगा वह कुछ ज़्यादा ही सवाल पूछ बैठा। 'उसका ग़लती नहीं है। श्रीनिवासन पहले से ही ऐसा है। वह साइंटिस्ट बहुत अच्छा है। अच्छा स्कॉलर है। लेकिन इंसान अच्छा नहीं है। वह शुरू से कमज़ोर है। नए-नए लड़कियों के साथ अफेयर मैं हमेशा सुनती रही। लेकिन इस बार कुछ ज़्यादा हो गया तब मैं यहाँ आई हूँ।'

आकाश के पैरों तले ज़मीन खिसक गई। 'फट्टू', 'कमज़ोर', 'तुम्हारे भी बच्चे', 'मैं न रही' सब एक-एक कर उसके कानों में गूँजने लगे। वह कुछ पूछ ही नहीं सका। उसे भरोसा ही नहीं हो रहा था कि शीला ऐसा भी कर सकती थी। दो-दो बच्चों को छोड़कर! दो बरस के मिथक को छोड़कर! उसने कान पर हाथ धर लिए और चुपचाप सुनता रहा। मिसेज श्रीनिवासन ने जो बताया उसका कुल जमा यही मतलब था। 'इस बार वह दोनों केरल आया। हनीमून सुइट बुक कराकर एक हफ्ते तक घूमता रहा। फिर अपना घर भी आया। अभी वे दोनों वही हैं। पिछले दो दिन से उन दोनों ने मेरे ही सामने, मेरे ही घर में लव किया। मैं लड़ती रही, चिल्लाती रही। वह दोनों मुझको बुड्ढी बोला। शीला की ग़लती नहीं है। लेकिन वह नहीं जानता कि वह किसके साथ उड़ने का सपना देख रही है। श्रीनिवासन उसे कुछ नहीं दे सकता। कुछ है भी नहीं उसके पास सिवाय उस घर के। मैं प्रिंसिपल हूँ उधर सैंट मैरी में।' अंत में अपना इतना सा परिचय देकर मिसेज़ श्रीनिवासन चुप लगा गईं।

उस दिन भर मिसेज़ श्रीनिवासन आकाश के घर रहीं। उसे समझाती रहीं। दिलासे देती रहीं। आकाश को समझ नहीं आ रहा था कि वह बच्चों से क्या कहे? मानसी से क्या कहे? मिथक तो कुछ समझता भी नहीं था। मिसेज़ श्रीनिवासन बच्चों के साथ खेलती रहीं। जाते हुए बोल गईं, 'तुम बहुत अच्छा है। तुम्हारा वाइफ ज़रूर वापिस आएगा। हम भी गॉड से प्रे करेगा। तुम उसको समझाना।'

एक महीने छुट्टी बिताने के बाद लौट आए श्रीनिवासन और शीला। प्रोजेक्ट पूरा होने के बाद पूरे देश में उनकी वाहवाही हो रही थी। जगह-जगह से बुलावे आते। हर सेमिनार में एक सेशन उनके लिए रिज़र्व रहने लगा। श्रीनिवासन के हर टूर में शीला साथ रहती। पूरी दुनिया घूमने का सपना पूरा हो रहा था। आकाश तक बिखरते जाने का नशा बढ़ता ही जा रहा था। दुनिया भर के तमाम लोगों से मिलती थी। उसे अपने कुछ होने का एहसास होता था। दूसरी ओर आकाश सिमटता जा रहा था। उसने खुद को अपने घर में क़ैद करके रख लिया। छत की ओर देखने में भी उसे तकलीफ होने लगी थी। छत पर चढ़ते ही सिहर उठता था।

कुछ दिनों में बात हर ओर फैल चुकी थी। दोस्त और रिश्तेदार सहानुभूति जताने लगते। उसकी हालत पर कुछ न कुछ कह जाते। आकाश टूटने लगा था। उसने सबसे

कटने का फैसला कर लिया। वह बार-बार शीला को फोन करता रहा। लेकिन शीला ने दो टूक कह दिया कि वह वापिस नहीं आएगी 'मुझे भी अपनी ज़िंदगी जीने का हक है।' कई बार तो शीला ने उसे बहुत बुरा भी बोला, 'तुममें गट्स नहीं है। स्पार्क नहीं है। स्पार्क समझते हो? चिंगारी।' आकाश लड़ने लगता उसे समझाने लगता तो शीला बिफर जाती, 'मैं कोई आलू की बोरी नहीं जो रोज़ ऑफिस जाऊँ, लदकर वापिस आ जाऊँ। फिर रात में बिस्तर पर बिछ जाऊँ। हम इंसान हैं। सिर्फ रोज़-रोज़ सेक्स ही ज़रूरी नहीं होता कि तुम अपनी ज़िम्मेदारी पूरा करते थे। मन भी कोई चीज़ होती है। उसे उड़ान चाहिए। तुम तो जाइंट व्हील वाले झूले से भी डरते हो। तुम्हें उड़ने का हुनर क्या मालूम?'

लोगों की नज़र से देखता तो आकाश खुद को कोसने लगता। उसे अपने आप से नफरत होने लगी। थक हारकर उसने भी ताबड़तोड़ गालियाँ सुनाई। कई बार झल्लाया। बार-बार चिल्लाया। लेकिन मिथक और मानसी का चेहरा देखता तो फिर शांत हो जाता। गिड़गिड़ाने लगता। वह चाहता था कि कुछ भी हो, उसे चाहे जो भी कह ले लेकिन शीला वापिस आ जाए। कई बार वह आकाश को गोद में उठाए डाइरेक्टर निवास के बाहर गेट पर भी खड़ा रहा। पहली बार शीला उसे देखती हुई भी गाड़ी से बिना उतरे चली गई। फिर एक दिन शीला ने वहाँ भी उसे सुना दिया, 'आकाश कितना बेशरम हो तुम? तुम्हें तुम्हारे दोस्त साथी कुछ समझाते नहीं? तुम अपनी बीबी तक को सँभाल न सके और अब इस तरह सड़कों पर भीख माँगने उतर आए हो?' आकाश के मन का आख़िरी संबल भी टूट गया। उसके अपने बनाए उसूल उसे गाली की तरह लगने लगे। चुभते हुए उसूलों को उसने धीरे-धीरे उधेड़ डाला। अपने को निकोल निकोलकर पूरी चमड़ी बदल डाली। आकाश ने फिर कभी शीला से न बात करने की कोशिश की और न कभी मिलने की।

खुद को खड़ा करने की कोशिश में आकाश ने अपने को बच्चों की परवरिश में झोंक दिया। कुछ दिनों के लिए घर से आकाश की माँ आ गई थी। माँ लगातार शीला को गालियाँ निकालती। एक दिन मानसी पूछने लगी, 'पापा कुलच्छिनी क्या होता है?' उसने मानसी को अच्छे से समझाया कि बेटा गाली होती है ऐसे शब्द नहीं यूज़ करते। 'फिर दादी क्यों कहती है? ममा कहाँ भाग गई? किससे डरकर भाग गई? क्यों भाग गई? कभी नहीं आएगी?' सवालों से आकाश परेशान हो जाता। वह उसे दिलासा देता, 'ऐसा नहीं बेटा। कहीं भागी नहीं है। ऑफिस में काम ज़्यादा है उसके बॉस आने नहीं देते। कुछ दिनों बाद आ जाएगी।' आकाश जानता था ऐसा कुछ नहीं होगा। दूसरा कुछ कह भी नहीं सकता था। वही नहीं बाकी सभी लोग इंतज़ार कर करके थक चुके थे। इंतज़ार खत्म होने के बाद समय सपाट बीतने लगा। जब तक दादी रहीं मिथक और मानसी उन्हीं की छाया में बड़े होते गए। तब तक बच्चों ने अपना और एक दूसरे का ध्यान रखना खुद सीख लिया था।

एक दिन डाइरेक्टर निवास पर हुए झमेले की खबर पूरी ऑफिस में फैली हुई थी। लोगों की बातों से पता चला श्रीनिवासन का बेटा आया हुआ था। उसने शीला को खूब सुनाया था। अपने पिता को भी। लोगों की बातों से ही पता चला कि शीला को जेल भेजने तक की धमकी दे रहा था। शीला ने पुलिस बुलाने को कहा तो श्रीनिवासन ने शीला को ही डाँटकर चुप करा दिया। शीला को यह बात अच्छी नहीं लगी। श्रीनिवासन का अपने बेटे का पक्ष लेना उससे बर्दाश्त नहीं हुआ। उसे यह भी एहसास हुआ कि ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि श्रीनिवासन से उसकी कोई औलाद नहीं थी। श्रीनिवासन ने सिर्फ उसे भोगा था।

श्रीनिवासन के रिटायरमेंट में तब सिर्फ डेढ़ साल बचे थे। इस दौरान वह शीला से बचने लगे थे। कहीं जाना होता तो अकेले चले जाते। उसे ऑफिस के दूसरे काम में लगाकर निकल जाते। दूसरे लोगों ने शीला के कान भरे। उसने खुद भी श्रीनिवासन के व्यवहार में अनमनापन महसूस किया था। वे बार-बार केरल लौट जाने की बात कहा करते थे। एक दिन हद हो गई। किसी डेलीगेशन के साथ श्रीनिवासन गोवा गए हुए थे। गोवा के गेस्ट हाउस में पुलिस की रेड पड़ी और श्रीनिवासन दूसरी लड़कियों के साथ पकड़े गए। लैब की छवि बचाने के लिए उन्हें तत्काल प्रभाव से बर्खास्त कर दिया गया। उन्हें चिट्ठी थमा दी गई कि दिल्ली आकर औपचारिकता पूरी करने की भी ज़रूरत नहीं थी। उनकी औपचारिकताएँ पूरी करके सारे सामान उनके घर के पते पर भेज दिए जाएँगे। यह बहुत बड़ा धमाका था। डाइरेक्टर निवास तत्काल प्रभाव से छीन लिया गया। शीला की नौकरी बची रही लेकिन डाइरेक्टर के साथ होने की जो धमक थी वह गायब हो चुकी थी। ऑफिस में बाक़ी लोगों द्वारा मूक तौर पर ही सही पहले से शीला का बायकाट चल रहा था। श्रीनिवासन के न रहने से ऑफिस में आना जाना दूभर होने लगा। लोगों के ताने सुन सुनकर वह परेशान होने लगी थी।

शीला किराए पर कमरा लेकर रहने लगी। श्रीनिवासन भी वहाँ कुछ दिनों के लिए आकर रहे। शाम के समय अक्सर श्रीनिवासन और शीला दोनों शराब के नशे में धुत पड़े रहते। सिगरेट के धुँए से कमरा भरा हुआ रहता। न सपनों की उड़ान बची थी और न आकाश का खुलापन। घुटी हुई ज़िंदगी जीते हुए श्रीनिवासन डिप्रेशन के शिकार हो गए। उन पर नज़र रखनी ज़रूरी थी। आत्महत्या की दो बार कोशिश कर चुके थे।

डॉक्टरों की सलाह और सामाजिक बहिष्कार देखते हुए श्रीनिवासन केरल लौटने की सोचने लगे। शीला भी साथ जाना चाहती थी लेकिन नौकरी बड़ा रोड़ा था। उम्र का वह पड़ाव ढलने लगा था जब सपनों की खातिर लोग पंखों की परवाह किए बिना सूरज तक उड़ जाते हैं। शीला में इतनी ताकत न थी कि श्रीनिवासन के बिना पड़ी रहती। वह इतनी बेरहम भी नहीं होना चाहती थी। वह भी केरल चली गई। केरल में रहते हुए छुट्टियाँ बढ़ाती रही और फिर एक दिन उसने श्रीनिवासन को बताए बिना ही अपना इस्तीफा भेज दिया।

केरल में श्रीनिवासन अपना घर शीला के

नाम करना चाह रहे थे। वितंडा खड़ा हो गया। अमेरिका से उनका बेटा रंजीत फिर आ गया। उसके सामने आते ही श्रीनिवासन हकलाने लगते थे। शीला को इस बात से बड़ी कोफ्त होती थी। तब उसे कानूनी अधिकार और समाज की स्वीकार्यता की असलियत पता चली। आसपास के लोगों में से भी कोई नहीं चाहता था कि शीला वहाँ रहें। घर उनके नाम करने की बात तो बड़ी दूर थी। इतने बरसों का खुला साथ भी उसे कोई मान्यता न दिला सका। लोगों की नज़र में वह श्रीनिवासन की रखैल बनी रही। उसने शादी भी नहीं की थी श्रीनिवासन से। शादी कर भी नहीं सकते थे श्रीनिवासन। बढ़ते झगड़ों के बीच एक दिन श्रीनिवासन को जबर्दस्त हार्ट अटैक आया। उनकी हालत खराब रहने लगी। समय बीतता जा रहा था। कोई हल नहीं निकल रहा था। मिसेज श्रीनिवासन अपने स्कूल के प्रिंसिपल निवास में रहती थीं। उससे थोड़ी दूर पैतृक घर में शीला और श्रीनिवासन रहते थे।

केरल में शीला का अपना कहने जैसा कोई नहीं था। कुछ लोगों को वह जानती ज़रूर थी लेकिन लोग उससे कन्नी काटने लगे थे। भाषा की समस्या एक अलग तरह की समस्या थी। उससे अकेलापन और गहराता जा रहा था। अकेलेपन और हर तरफ के तिरस्कार से वह भी अवसाद में घिरती जा रही थी। जून का उत्तरार्द्ध चल रहा था। केरल में मानसून दस्तक दे चुका था। हर तरफ हरियाली और बारिश का नज़ारा था। बरसों पहले ऐसे ही मौसम में वह श्रीनिवासन के साथ हनीमून सुइट में ठहरी थी। तब कुछ और बात थी। आज मानसून की बारिश आँसुओं की तरह दिख रही थी। लग रहा था प्रकृति उसकी दशा पर रो रही है। शीला ने अख़बार खोला तो उसके चेहरे पर गर्व और खुशी की चमक उभर आई। कॉलेज के दिनों जैसी फोटो में खुद को देखकर वह अचकचा गई थी। पूरी खबर एक साँस में पढ़ गई। सीबीएसई के दिल्ली रीजन में मानसी ने पहला स्थान पाया था साथ ही उसका आई आई टी में सेलेक्शन भी हुआ था। रैंक देखकर निश्चित था कि दिल्ली आई आई टी में ही उसे जगह मिल जाएगी।

मानसी की फोटो देखकर उसे अपने कॉलेज के दिन फिर से याद आ गए। हुबहू चेहरा मगर उससे भी अधिक प्रदीप्त और गर्व से उन्मत्त। चेहरे पर हल्की सी मुस्कुराहट। शीला की आँखों से मानसूनी बारिश झड़ने लगी। किसी के कंधे का सहारा चाहिए था। श्रीनिवासन इस इच्छा को महसूस नहीं कर सकते थे। उसका मन हुआ कि मिसेज श्रीनिवासन के पास चली जाए। मगर हिम्मत नहीं हुई। इतनी बर्बरता की थी उनके साथ। नज़र मिलाने की भी हिम्मत नहीं थी। कितनी बार तो समझाया था मिसेज श्रीनिवासन ने 'तुम लौट जाओ। आकाश बहुत अच्छा लड़का है। वह तुम्हें माफ कर देगा। हम उससे बात करेगा।' लेकिन शीला ने हर बार उनकी बात को हँसी में उड़ा दिया था। अख़बार के उस ख़बर वाले पन्ने को मोड़कर शीला ने चुपचाप अपने पर्स में रख लिया।

शीला ने धीरे-धीरे अपने आपको मज़बूत किया। आकाश द्वारा ठुकरा दिए जाने की स्थिति में भी खुद को संयत रखने की कोशिश करने लगी। लगातार सोचते हुए अंत में उसने आगे बढ़ने की सोची। इंटरनेट से आकाश के ऑफिस का फोन निकाला। उस दिन आकाश ऑफिस में था। उसे ज़्यादा इंतजार नहीं करना पड़ा। तीन चार घण्टी के बाद आकाश ने ही फोन उठाया, 'हेलो...' थोड़ी देर की शाँति फिर...'आकाश बोल रहे हैं?'

'हाँ, आप कौन?'

'कैसे हो?'

'शीला?', आकाश का मुँह खुला रह गया। थोड़ी देर के लिए दोनों तरफ ख़ामोशी पसरी रही।

'हँ...बच्चे कैसे हैं?' लरजती आवाज़ आई मानों आँसू सँभाल रहे हों।

'ठीक हैं बस्स। ...मानसी के बारे में पता चल गया होगा?'

'हूँ...आप?'

आगे कोई बात नहीं हो सकी। थोड़ी देर तक तारों में करेण्ट दौड़ती रही और दोनों तरफ की साँसों की आवाज़ एक दूसरे के कानों में समाती रही। पता नहीं किसने फोन काटा या अपने आप कट गया।

महीनों तक उधेड़बुन में लगा रहा आकाश। कई दिनों तक क्षीण सी आशा में इंतज़ार भी करता रहा। दुबारा फोन नहीं आया तो मन को फिर से पुरानी पटरी पर लौटा लिया। कभी उसका मन बच्चों सा उत्सुक हो जाता कि शीला आ जाती फिर मन जिरह करता ऐसा नहीं हो सकता। कभी मन कहता कि वह कोशिश तो करे तभी दूसरे कोने से आवाज़ आती कि खुद आए फिर भी मना कर दूँगा। अब भला ज़रूरत भी क्या है उसकी? मन फिर से उदास हो जाता। बरसों की जमी हुई ख़ामोशी भला तीस सेकण्ड की बातचीत से कैसे पिघल जाती। उस तीस सेकण्ड ने कुछ उम्मीद जगा दी थी, मन में फितूर उठा दिए थे। मन पुलक उठता था। तरह-तरह के सवाल जवाब में उलझा रहता था आकाश।

सूसू से भीगे बिस्तर, आँसुओं से भीगा तकिया और बच्चों की सिसकियों से गीली हुई रातें यादों के झरोखे में उठते तो आकाश का मन कसैला हो जाता। वह भीतर से तड़प उठता। मन से बद्दुआ निकलती कि शीला को नरक की आग भी नसीब नहीं होगी। अगले ही पल उसका दूसरा मन कोमल हो जाता। उसे ठीक से कोस भी नहीं पाता था। मन जिरह करता कि शीला की ग़लती भी क्या थी? मनुष्य तो अपने मन के अधीन है। शीला ने भी बस इतना ही किया कि उसने अपने मन की सुनी। उसी के हिसाब से कदम उठा लिए।

उसका एक मन शीला की तरफ से वकील बन जाता। उसके पक्ष में जिरह करने लग जाता। उस जिरह में शीला की तरफदारी वाले मन में तर्क भी बढ़िया बढ़िया पेश किए जाते। बहस तीखी होती चली जाती। उसका दूसरा मन झट से परास्त होकर शीला के पक्ष में झुक जाता। वह तर्क देता कि शीला की इच्छा उन लोगों को दुखी करने की नहीं थी। वह तो अपना सुख तलाश रही थी। अपने जीने का अर्थ तलाश रही थी। आत्मसाक्षात्कार की सीढ़ियाँ चढ़ रही थी। उस रास्ते से हम दुखी हो गए। क्योंकि हम अपने स्वार्थों के लिए उससे जुड़े हुए थे। इसमें उसकी क्या ग़लती?

जवाब में दूसरा मन कहता आकाश का नहीं तो कम से कम बच्चों का ख्याल करती। जाने के बाद उसने मुड़कर देखा भी तो नहीं। तेरह बरस बाद इस तरह फोन करने का क्या मतलब है?

दुबारा शीला का फोन नहीं आया। थक हारकर आकाश का मन शाँत हो गया। अचानक छः महीने बाद फिर से फोन आया। इस बार बात को लम्बी खींचने की कोशिश दोनों ने की। मुश्किल से दो मिनट भी पूरे नहीं हो सके। छः महीनों में कुकुरमुत्ते की तरह उगी उम्मीदों ने कुछ बातें जुटा दी थीं। अचानक शीला ने पूछ लिया, 'तुमने मुझे तलाक़ क्यों नहीं दिया आकाश?'

एक क्षण में भरभराकर उम्मीदें मिट्टी में समा गईं। आकाश के पैरों तले ज़मीन खिसक गई। शीला घर से तो दूर ही थी। बरसों से उससे अलग दूर रह रही थी। उस तीस सेकण्ड के फोन से बनी उम्मीद ने जैसे नई ज़मीन तैयार कर दी थी। हाय रे मनुष्य का मन। यह क्या-क्या सोचता रहता है। कुछ सेकण्ड आकाश को सँभलने में लगे। उसने उम्मीदों के चलते चेहरे पर पसर आई कोमलता को खुरचकर उतार फेंका। एक झटके में उसे लगने लगा कि तलाक़ के लिए वह फोन कर रही है। उसके पक्ष में उठे मन को आकाश ने खूब गालियाँ दीं। फोन पर कुछ और बोलता रहा, 'मुझे ज़रूरत नहीं लगी। तुम्हें ज़रूरी हो तो पेपर भिजवा देना। साइन कर दूँगा।'

शीला ने आकाश की तल्ख़ी को महसूस कर लिया था। तल्ख़ी के बावजूद उसके पक्ष में बोलने को लेकर वह परेशान हो उठी। फोन रखकर रोती रही। तुम इतने ठण्डे कैसे हो सकते हो आकाश? इतना महान् क्यों बनते हो? कभी तो कमीनापन दिखाओ। मेरी तरह नीच बनो। मुझे गालियाँ दो, सज़ा दो, ताने मारो। इतने अच्छे मत बनो। इस दुनिया में जीने के लिए इतनी अच्छाई बर्दाश्त नहीं करते लोग। लोग तुम्हारा यूज़ करेंगे, तुम्हारा इस्तेमाल करेंगे जैसे मैंने किया है। देर तक कुछ-कुछ कहकर रोती रही शीला। यह बातें फोन के रिसीवरों से पार नहीं जा सकीं। न इसके एहसास पार जा सकते थे। थोड़ी देर तक दोनों फोन लेकर खड़े रहे। फोन कट गया।

दोनों के गीले मन में कुछ बीज पड़ चुके थे। उसमें रह-रहकर अंकुर उठते। दोनों उन्हें मसल देते। एक महीने के भीतर ही फिर से शीला का फोन आ गया। आकाश ने ज्यादा उत्सुकता नहीं दिखाई। वह इंतज़ार करता रहा कि शीला अपने मतलब की बात कह ले। तलाक की बात कर ले। शीला की आवाज़ आई तो वह कुछ और कह रही थी, 'मैं वापस आना चाहती हूँ।'

'कहाँ?' आकाश ने तब भी उत्सुकता को ताक़त के बल पर रोक रखा था। न उम्मीदों को पंख लगाया, न इच्छाओं को चेहरे पर आने दिया। बहुत संयत बना रहा।

'तुम्हारी ज़िंदगी में।' शीला ने भी बस इतना कहा।

'अच्छे से सोच लो। बहुत कुछ बदल चुका है। बच्चे बड़े हो गए हैं।' बेहद सधी हुई आवाज़ में बोला था आकाश। शीला ने उसका ठंडापन महसूस कर लिया। वह इस ठंडेपन के पीछे की स्वीकार्यता भी समझती थी। आकाश के मन के असमंजस को भी समझ रही थी। कुछ और बातचीत के बाद उस दिन भी दोनों ने फोन रख दिया।

दो दिन पहले आख़िरी बार फोन आया था शीला का। इस बार बातचीत का मुद्दा कुछ ख़ास नहीं था। शीला ने पहले से ही सोच रखा था। उसने आकाश को कुछ समय भी नहीं दिया बस इतना कहा, 'शुक्रवार को आ रही हूँ मैं'। आकाश भी कुछ बहुत बोल नहीं सका। उसे मना भी नहीं कर सका। बहुत ऊहापोह में था उसका मन। उसे समझ नहीं आ रहा था बच्चों से बताए या नहीं। उसे भरोसा नहीं रह गया था शीला की बात पर। फिर भी ऑफिस से छुट्टी लेकर बैठ गया था। कभी कभार की बातचीत को भी उसने बच्चों से शेयर नहीं किया था। शेयर करने लायक कुछ था भी नहीं। उसने चुपचाप इंतज़ार करने की सोची थी। इतने बरसों में यही एक काम बखूबी सीख गया था। शीला आएगी तो क्या कहेगा? कैसे रिएक्ट करेगा? क्या पूछेगा? बहुत से सवाल मन में चल रहे थे। उन्हें परे धकेल कर आएगी तो देखा जाएगा वाले तर्ज पर वह समय को बड़ी तेज़ी से बीतते देखना चाह रहा था लेकिन घड़ी की सुइयाँ थकी हुई लग रही थीं। बिल्कुल उसी की तरह जैसे वह इन चौदह बरसों में थक चुका था। सोचता था शीला सचमुच आ गई तो सब कुछ उसके हवाले कर थकी उतार सकेगा। शरीर की नहीं तो मन की थकान तो उतारा ही जा सकता था।

मन पर छाए असमंजस के बादल को मानसी ने पढ़ लिया था। उसने तबियत पूछी, छुट्टी के लिए पूछा तो उसे भी टरका दिया, 'हाँ बेटा, बिल्कुल ठीक है। तुम कॉलेज जाओ। बस ऐसे ही आराम करने के लिए छुट्टी ले ली थी। आगे वीकेण्ड है लम्बा आराम हो जाएगा।' आकाश चाहता था कम से कम शीला ऐसे समय आए जब घर में बच्चे न हों। फरवरी की दोपहर वैसे भी जल्दी बीत जाती है। शीला ने दोपहर तक पहुँचने की बात कही थी। वह सोफे पर बैठा ऊँघता रहा, तो कभी वहीं लॉबी में चहलकदमी करता रहा। कुछ घण्टे काटने मुश्किल जान पड़ रहे थे। कभी फोन चेक करता तो कभी घड़ी की ओर देखता।

बाहर दरवाज़े पर कुछ आहटें हुई। टैक्सी का दरवाज़ा बन्द होने की आवाज़ आई। आकाश उठा नहीं। वह निश्चिंत हो जाना चाहता था। वह इंतज़ार कर रहा था। उसके कान दरवाज़े के पास आहटें सुनने में लगे थे। बाहर बैग हाथ में लिए शीला उधेड़बुन में इधर-उधर देख रही थी। घर की दीवारें, कॉलोनी की सड़कें, सामने वाले घर की दीवारें। कदम उठाना भारी लग रहा था। वह चाहती थी घर का दरवाज़ा अपने आप खुले। टैक्सी जा चुकी थी। दोपहर का सन्नाटा उसकी ओर घिरता आ रहा था।

दोनों सीढ़ियों को एक बार में पार करते हुए शीला ने डोरबेल पर हाथ रख दिया। ओह गॉड! दरवाज़ा आकाश ने खोला था। गिरते-गिरते सँभली थी शीला कि किसी और ने खोला होता तो क्या बोलती वह। आकाश बच्चों सा खुश हो गया, ''अरे! आ गईं तुम? आओ! आओ! चलो अन्दर!'' नीचे उतरकर दोनों भारी बैग खुद उठा लिए और शीला के पीछे-पीछे घर में दाखिल हो गया।

आकाश ने पानी का ग्लास बढ़ाते हुए बोला, ''हाथ मुँह धोना है?''

गर्दन हिलाते हुए शीला ने ग्लास पकड़ा और पानी हलक से नीचे उतार लिया। आकाश की नज़रें गले पर अटकी हुईं थीं, उठती-गिरती नसों के साथ जैसे उसकी धड़कनें बहकती जा रही थीं। उसे जैसे कुछ याद आया, ''बैठो, मैं चाय बनाता हूँ। मेरे हाथ की चाय बहुत पसन्द है न तुम्हें?''

शीला के चेहरे पर फिर मुस्कान तिर गई कि इतने बरस में क्या आदमी की पसन्द नहीं बदल सकती? वह सहज होने की कोशिश करने लगी। थोड़ी ही देर पहले रास्ते में सोच रही थी कि घर में कैसे घुसेगी? लोगों का सामना कैसे करेगी? खुद आकाश से कैसे बातें करेगी? पर आकाश ने सब कुछ इतना आसान कर दिया था कि जैसे कुछ महीने पहले की बात हो, वह मायके से होकर आई है और वह उसे देखकर खुश हो रहा था।

दिन छलाँग लगाकर सीधे तीसरे पहर में पहुँच चुका था। कॉलोनी में स्कूलों के वैन की आवाजाही शुरू हो चुकी थी। बच्चे स्कूलों से लौट रहे थे। सूरज आसमान के दूसरे छोर पर जा चुका था। डोरबेल की आवाज सुनकर आकाश बड़ी तेजी से किचन से निकल आया। दोनों की नज़रें एक साथ घड़ी की ओर मुड़ गईं, चार बज रहे थे। मिथक के आने का समय था। आकाश ने दरवाज़ा खोला मगर सामने मानसी खड़ी थी। ''हैलो पापा! आज लेक्चर्स नहीं ....'' सामने शीला को देखकर ठिठक गई। बड़ी तेज़ी से उसके चेहरे पर भाव आते जाते रहे। पहले आश्चर्य, फिर थोड़ी भावुकता और फिर न जाने क्यों निराशा में सपाट सा होता चेहरा। उसके होंठ हिले, दूर से देखकर कोई भी जान सकता था कि ''माँ या ममा'' जैसा कुछ कहा, मगर हलक से कोई आवाज़ नहीं आई।

शीला सोफे के पास खड़ी थी। हाथ थोड़ा आगे की ओर उठ आया था। मानसी को वहीं ठिठकी हुई देखकर उसकी हिम्मत नहीं हुई कि उसे कुछ कहे। मानसी एकाएक पापा की ओर घूमी और उन्हें घूरते हुए वहीं से सीधे निकल गई। सामने सीढ़ियों को तेज़ी से पार करती हुई ऊपर अपने कमरे में चली गई। पीछे जोर से दरवाज़ा बन्द होने की आवाज़ आई। शीला धम्म से सोफे पर बैठ गई। बैग से रुमाल निकाल माथे से पसीने की बूँदे पोंछने लगी। फरवरी की ठण्डी में पसीने-पसीने हो गई थी। धड़कनें तेज़ हो गई थीं। शीला एकदम चुप और किसी गहरी सोच में डूबी हुई थी।

दूसरी बार डोरबेल बजी तो आकाश दरवाज़े के पास ही था, तुरंत दरवाज़ा खोल दिया। अन्दर आते हुए मिथक बातें किए जा रहा था, ''पापा स्कूल बस नेक्स्ट वीक और चलेगा। आज मैम कह रहीं थीं कि.....'' शीला को देखकर उसकी बातें भी हलक में अटकी रह गईं।

चेहरे पर अज़नबियत और कहीं दूर की पहचान का एक अकुलाहट भरा कुतूहल तैर रहा था, ''आप?'' और फिर धीरे-धीरे पूरे एलबम के पन्ने उसकी नज़रों के सामने पलटने लगे। गोद में खेलता, मुस्कुराता मिथक और उसकी.....'माँ'। मिथक कुछ बोल नहीं सका। उसका निश्छल चेहरा प्रश्नों से अटा पड़ा था। प्रश्नों से भरा चेहरा उसने आकाश की ओर घुमा दिया।

शीला की तो हालत बहुत बुरी थी। इतने दिनों बाद मिथक को देख रही थी। जैसे उसके ही चेहरे में लड़के का चेहरा बना दिया गया हो। मिथक का चेहरा अपनी माँ से मिलता है, ऐसा सब लोग कहते थे। गले लगाने के लिए हुड़क रही थी। गले में थूक गाढ़ा होकर चिपकने लगा जिसे निगलने की कोशिश करती रही। हलक सूखता जा रहा था। वह न बैठ पा रही थी न कुछ बोल पा रही थी। किसी प्रतिक्रिया के डर से अपने को रोकी हुई थी। मगर रोक पाना मुश्किल होता जा रहा था।

आकाश की नज़रों से टकराकर मिथक की नज़रें थोड़ी देर ठिठकी रहीं। आकाश ने नज़रें ऊपर मानसी के कमरे की ओर घुमा दीं। मिथक भी तेज़ी से चढ़कर सीढ़ियाँ पार करता हुआ ऊपर कमरे में चला गया।

शीला की धड़कनें अब भी बहुत तेज़ थीं, साँस की आवाज़ दूर तक जा रही थी। वह आकाश और बच्चों के दोराहे पर खड़ी थी। दोनों रास्ते उसे अपनी ओर मिलने की बजाय अपने से दूर होते जाते दिख रहे थे। मिथक को लेकर वह ज़्यादा परेशान थी। उसे इतना बड़ा देखकर बरसों से दबी ममता उफान मारने लगी थी। उसकी आँखों में दो साल वाला मिथक ही बसा हुआ था। वह उसे दुलराना चाहती थी, चूमना चाहती थी, गले लगाना चाहती थी। वह दूर से ही बिना बात किए निकल गया।

अभी थोड़ी देर पहले वह कितना खुश होने लगी थी। आकाश से मिलकर सहज हो रही थी कि अचानक फिर से यह घर, घर के लोग अजनबी लगने लगे। उससे भी पहले बाहर से घर की दीवारें देखकर खुश थी कि कुछ नहीं बदला है, जैसा छोड़कर गई थी सब वैसा ही है। मगर चौदह बरस रिश्ते के लिए बहुत बड़ा समय होता है।

उसे लगा कि आकाश भी बिल्कुल इन दीवारों की तरह है। उसी रंग में, उतनी ही काई, उतने ही पुरानेपन को अपने ऊपर लादे जैसे वह उसे छोड़कर गई थी। इस तेज़ी से बदलती दुनिया में कोई व्यक्ति इतना अपरिवर्तित कैसे रह सकता है? उसे आश्चर्य तो होता मगर उसके दिल के किसी कोने में यह भरोसा भी था कि आकाश की तरह सुलझा हुआ, तार्किक और सहज इंसान इसी दुनिया में मिल सकता है।

''तुम बिल्कुल भी नहीं बदले आकाश!'' फिर थोड़ा रुककर, ''इसीलिए तुम्हारी चाय भी नहीं बदली, उसी तरह तरोताज़ा कर देती है जैसे पहले करती थी।'' शीला माहौल को थोड़ा सहज बनाना चाहती थी।

''चलो अच्छा है। तरोताज़ा हो जाओ। थोड़ा बाहर घूम आते हैं।''

बीच में ही रोक दिया, ''नहीं आकाश, बहुत घूम चुकी हूँ, घर में ही रहना है अभी।''

शीला फिर से चुप हो गई थी। शीला का मन पसीजता जा रहा था। हड़बड़ाहट में कप उँगली में फँस गया। खींचते हुई जल्दी से टेबल पर पटक दी और खिसककर आकाश के नज़दीक आ गई। रुक-रुककर सँभलते हुए बोली, ''यार! इतना प्यार क्यों करते हो? कैसे कर लेते हो?''

आकाश कुछ बोल नहीं सका। शीला

का सिर अपने कंधे पर टिका दिया। सुबकने की आवाज़ कानों में भरने लगी। वह हौले हौले थपकियाँ देता रहा। शाम गहराने लगी थी। दरवाज़ों के नीचे झिर्रियों से अँधेरा घुसकर फर्श पर और धीरे-धीरे दीवारों पर चढ़ने लगा था। ऊपर कमरे से मिथक और मानसी की आवाज़ें आ रही थीं। एक बार मानसी नीचे किचन में आकर जा चुकी थी। आकाश से भी कुछ बोला नहीं था। अब दरवाज़ा बन्द था। शीला ने सुबकते हुए मुँह उठाकर ऊपर दरवाज़े की ओर देखा और लम्बी साँस छोड़ी। मानों हताश हो गई हो। आकाश समझ गया कि बच्चों के व्यवहार से वह विचलित है। डोर बेल बजी। खाना बनाने वाली बाई आ गई थी। शीला के सिर को धीरे से सोफे के मोढ़े पर टिकाते हुए आकाश उठ गया। दरवाज़ा खोलकर उसने बाई को खाने के लिए बताया और ऊपर बच्चों के कमरे की ओर चला गया। सीढ़ियाँ चढ़ते हुए मन में आकाश तरह-तरह के रिहर्सल करता जा रहा था कि किस तरह बच्चों से बात की जाए।

दरवाज़ा खोलकर दाखिल हुआ। मिथक लड़ने के भाव में मानसी से पूछे जा रहा था, ''ये यहाँ क्यों आईं हैं? अब क्या बाकी है? क्या लेने आईं हैं?''

मानसी और मिथक आकाश को देखकर चुप हो गए। आकाश ने सवालों के जवाब से ही बात शुरू की, ''बेटा! वह हमारे साथ रहने आईं हैं। दो दिन पहले फोन कर पूछा था। मैंने हाँ कर दी थी।'' आकाश ने जानबूझकर बताने की जगह पूछा शब्द इस्तेमाल किया था।

मानसी एकाएक बोल उठी, ''तभी आप दो दिन से....''

बात पूरी होने से पहले आकाश बोल पड़े, ''हाँ, छुट्टी ले ली थी। ऑफिस में मन नहीं लग रहा था। सोचना भी चाहता था कि क्या सही होगा?''

''क्या सोचा तब आपने?'' अबकी मिथक की आवाज़ आई।

''बेटा, अब आप लोग बड़े हो गए हो, हर बात समझते हो। मैं अपनी तरफ से क्या कहूँ?।'' फिर थोड़ा रुकते हुए, ''मेरी ज़िंदगी में उससे पहले और उसके बाद भी कोई और नहीं रहा। तुम लोगों से इतना प्यार मिला कि कभी किसी की कमी महसूस नहीं हुई। शायद शीला की भी।''

मानसी और मिथक दोनों उठकर आकाश के पास आ गए थे। पापा को इतना भावुक और शांत उन्होंने कभी नहीं देखा था। वह तो हर समय उनके साथ बच्चे बने रहते थे। आज अचानक बहुत बड़े-बड़े लग रहे थे। आकाश ने बात जारी रखी, ''दो दिन पहले जब शीला ने लौटने के बारे में बताया तो मैं डिस्टर्ब हो गया। बहुत सोचा। लगातार सोचता रहा। मुझे लगा कि मैं अब भी उसका इंतज़ार करता रहा हूँ। हो सकता है इसमें मेरा कुछ स्वार्थ भी हो। बुढ़ापे का डर हो। मगर मैं हमेशा तुम लोगों के साथ रहना चाहता हूँ। शीला के लिए भी निर्णय तुम्हीं लोगों पर छोड़ दिया है। तुम लोगों को ठीक नहीं लगता तो हम किराए पर एक मकान ले लेंगे। शीला वहीं रह लेगी।''

''क्या? आप चले जाओगे?'' दोनों एक साथ बोल उठे। मिथक ने आकाश को ज़ोर से पकड़ लिया जैसे वे भागे जा रहे हों।

''अरे! नहीं बच्चे। अब कहाँ जाऊँगा? इतनी हिम्मत नहीं बची है मुझमें। मगर शीला वापस आ गई है तो उसके लिए इंतज़ाम तो करना पड़ेगा।'' आकाश बस रोए नहीं। उनकी आवाज़ काँप रही थी। गला सूख रहा था। बहुत मुश्किल से आवाज़ हलक से निकल पा रही थी।

''पापा, आप क्या चाहते हैं? वे यहीं रहें?'' मानसी ने पूछा। उसने जानबूझकर और कोशिश करके शीला को माँ नहीं बोला।

''पिछले दो दिनों में यही सोच सका हूँ। मगर तुम लोगों की सहमति के बिना बिल्कुल नहीं। तुम्हारे पास पूरा समय है। चाहे जितने दिन में निर्णय करो। तुम लोगों पर किसी प्रकार का कोई दबाव नहीं है।'' इतना कहकर आकाश धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतर आए।

शीला अब भी सिर टिकाए, आँखें बन्द किए विचारमग्न थी। आँखों के कोने से आँसुओं का रेला धीरे-धीरे बह रहा था। आकाश ने उसे डिस्टर्ब नहीं किया। सोफे पर ही सिर टिकाकर वह भी बैठ गया। थोड़ी देर में शीला ने सिर घुमा लिया। आकाश के कंधे पर उसका सिर टिक गया, 'आकाश! मैं बहुत बुरी हूँ। मुझे डाँटो, मारो, मुझ पर चिल्लाओ! इतना शांत क्यों हो? इतना खुश क्यों हो?'

''नहीं बच्चा! ऐसी बात नहीं करते।'' कहते हुए आकाश ने शीला को अपनी ओर खींच लिया। शीला ने भी आकाश को ज़ोर से जकड़ लिया। जब आकाश प्यार के गहन क्षणों में होते थे तो उसे बच्चा ही कहकर बुलाते थे। इस शब्द ने उसे फिर से सहज कर दिया था।

''मिसेज श्रीनिवासन भी तो खुश होंगी न?'' आकाश के इतना पूछते ही शीला ने अपनी पकड़ एकदम ढीली कर दी। आकाश ने ढीली पड़ गई उसकी पकड़ को महसूस कर लिया। फिर भी उसी तरह बोलता रहा। शीला, आकाश के चेहरे पर उठते गिरते भावों को पढ़ रही थी।

''मैं मिसेज श्रीनिवासन से मिलता रहा हूँ। एक वही थीं जिन्होंने मुझसे कहा था कि, ''तुम्हारा वाइफ तुमको ज़रूर मिलेगा, मैं गॉड से प्रेयर करूँगी कि उसे सही रास्ता दिखाए और माफ कर दे।''

शीला को कुछ सूझ नहीं रहा था। वह बार-बार अपना गर्दन घुमा रही थी, जैसे कहीं छुपने की जगह ढूढ़ रही हो। एकबारगी उसने आकाश के चेहरे पर भी अपने लिए घृणा के भाव उठते हुए महसूस किया। वह भीतर तक थर्रा गई कि क्या आकाश को उसके सारे खेल पता हैं?

वह अपना चेहरा रगड़ने लगी। उस पर जले हुए के निशान दिख रहे थे। सामने अँधेरा आईना बनकर खड़ा था जिसमें उसको अपना जला हुआ, बेहद कुरूप और बिखरा हुआ चेहरा नज़र आ रहा था। बीत चुके समय की चलती रील देखकर शीला जैसे सिहर उठी थी, दोनों कानों को बन्द कर चीखना चाहती थी। सोफे से उठ जाना चाहती थी लेकिन बाकी घर भी अभी अजनबियत से भरा लग रहा था। आकाश के पास उसे कुछ सुकून मिल रहा था। आकाश ने उसका एक हाथ अपने हाथ में ले लिया। उस पर अपनी उँगलियाँ फिराने लगा। शीला को यह स्पर्श सुखद लग रहा था। चुप्पी

फिर से गहराने लगी थी, शीला का दम घुट रहा था, मगर हलक से कोई आवाज़ नहीं निकल रही थी। आकाश ने उसके भीतर चल रही गहमागहमी को भाँप लिया था, उसने बोलना जारी रखा, ''तुम्हारे लौटने के बारे में मैंने सिर्फ मिसेज़ श्रीनिवासन को बतलाया था, वो बहुत खुश हुईं।''

''दरअसल मुझे पूरा भरोसा भी नहीं था।'' कहते-कहते आकाश की आवाज़ फिर से काँपने लगी थी और वह चुप लगा गया।

इतनी देर से मूर्ति बनी शीला ने गर्दन उसकी ओर घूमा दी, ''इतने बरसों तक क्या सचमुच तुम मेरे लौट आने की राह देख रहे थे?''

''शायद!'' बस इतना ही बोल सका आकाश। फिर नज़रें शीला के चेहरे से हटा लीं।

रात गहराती जा रही थी, अँधेरा अपने चरम पर था। वह रात सबसे भयानक लग रही थी। दोनों बड़ी लम्बी-लम्बी रात काट चुके थे। मगर दोनों से वह रात काटी नहीं जा रही थी। सोफे पर लेटी शीला की आँखों में दूर-दूर तक नींद नहीं थी। वह जानती थी कि उसके जीवन के अमावस का अँधेरा कोई नहीं मिटा सकता। घर में भी किसी ने बत्ती जलाने की पहल नहीं की थी। घुप्प अँधेरे में डूबा था पूरा घर। रह-रहकर ऊपर के कमरे से हल्की-हल्की आवाज़ें आती रहीं, मगर कुछ साफ सुनाई नहीं पड़ रहा था।

सभी अलग-अलग एक दूसरे की नींदों के बारे में सोच रहे थे, लेकिन कोई सोया नहीं था। सबकी आँखें खुली ही थीं और रात धीरे-धीरे बीती जा रही थी। थोड़ी देर में सुबह ने दस्तक दे दी, खिड़कियों के परदे हिलने लगे थे। बाहर अच्छी हवा चल रही थी। चिड़ियों और कौओं की आवाज़ें सुबह होने का संदेशा लाईं थीं। शीला के लिए सुबह अभी बहुत दूर थी। आकाश उठकर टॉयलेट जा चुके थे। किसी की पदचाप सुनकर शीला ने आँखे खोली, उसे लगा कि सामने सुबह खड़ी है। मिथक खड़ा था, सूजी हुई और भकुआई आँखें बता रही थी कि वह भी रात भर नहीं सो सका था। शीला झट खड़ी हो गई और मिथक उसके सीने में धँसता चला गया। इतने बरसों से मजबूत हो चुका बाँध भी आख़िरकार उस रोज़ टूट गया, ''माँ, आप बहुत गन्दी हो, बहुत गन्दी हो।''

''हाँ, बेटा हाँ।'' शीला उसे चूमती जा रही थी, सँभालती जा रही थी और वह ज़ोर-ज़ोर से रोता जा रहा था और शिकायत करता जा रहा था।

''मुझे आपके बिना अच्छा नहीं लगता था, मगर आपको बुला नहीं पाता था। दीदी कहतीं कि पापा दुखी हो जाएँगे, रोने लग जाएँगे। आप इतने दिन बाद क्यों आए? कहाँ छिपे थे इतने दिन? हमारी याद नहीं आती थी?''

शीला बस रोये जा रही थी। सुबह की शांति में दोनों के रोने की आवाज़ें दूर तक जा रही थी। आकाश टॉयलेट से निकल आए। शीला और मिथक को देखते रहे। ऊपर सीढ़ियों पर मानसी खड़ी मुस्करा रही थी, साथ ही उसकी आँखों से भी लगातार आँसू झरते जा रहे थे।

आकाश के चेहरे पर सुकून पसरता जा रहा था। यह चौदह बरसों की लम्बी, घनी, काली रात के कट जाने का सुकून था। सब मिल जुलकर रोते रहे। एक दूसरे से शिकायतें करते रहे। मानसी और मिथक को शीला के साथ छोड़कर आकाश किचन में घुस गए। दूध को गैस पर चढ़ाकर कॉफी के चार बड़े कप सजा रहे थे। हाथ में कॉफी के पावडर से भरा चम्मच था मगर आँखें सोफे पर टिकी थीं। बिना देखे उन्होंने चारों कप में कॉफी डाल दी और उनकी ब्रांडेड कॉफी तैयार हो चुकी थी, जिसकी रंगत और महक के दीवाने उस घर में सारे लोग थे।

❐❐❐

सम्पर्क- अमिय बिन्दु, 8 बी/2, एन पी एल कॉलोनी, न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली - 110012, मोबाइल- 9311841337

**शिवना साहित्यिकी सदस्यता प्रपत्र**

यदि आप शिवना साहित्यिकी की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष), 1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा शिवना साहित्यिकी (SHIVNA SAHITYIKI) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को शिवना साहित्यिकी के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण इस प्रकार है :

Name of Account : **Shivna Sahityiki**, Account Number : **30010200000313**, Type : **Current Account**, Bank : **Bank Of Baroda**, Branch : **Sehore (M.P.)**, IFSC Code : **BARB0SEHORE** (Fifth Character is "Zero")

(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

**नाम :**_____ **डाक का पता :**_____

_____ **सदस्यता शुल्क :**_____ **चैक / ड्राफ़्ट नंबर :**_____

**ट्रांज़ेक्शन कोड ( यदि ऑनलाइन ट्रांसफ़र किया है ) :**_____ **दिनांक :**_____

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

**संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय :** पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

# जौली एलएलबी-2
# मकीम कौन हुआ है मकाम किसका था

वीरेन्द्र जैन

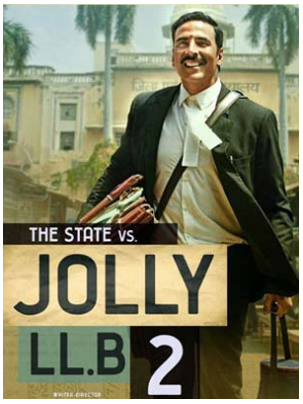


किसी भी फिल्म का सिक्विल बनने का एक मतलब यह भी होता है कि उससे पहले बनी फिल्म सफल रही थी और उसी सफलता की पूँछ से बँध कर नई फिल्म की वैतरिणी पार की जा सकती है। जौली एलएलबी-2 भी ऐसी ही कोशिश की गई, जो रचनात्मक स्तर पर बड़ी लक़ीर नहीं खींच सकी। दोनों फिल्मों में एक ही चीज़ साझा है और वह है हमारी न्याय व्यवस्था का यथार्थवादी चित्रण। दोनों ही फिल्मों में न्यायाधीश की भूमिका सौरभ शुक्ला ने निभाई है। न्यायालयों के बारे में जो आदर्शवादी भ्रम व्यावसायिक फिल्मों ने रच दिया था उसे इन जैसी कुछ फिल्मों ने तोड़ दिया है।

अधिकारों और ज़िम्मेवारियों के विपरीत कम वेतन और सुविधाओं वाले न्यायाधीश बड़े-बड़े पैसे और सुविधाओं वाले वाक्पटु वकीलों के आतंक में अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हैं। इस फिल्म में तो न्यायाधीश (सौरभ शुक्ला), वकील प्रमोद माथुर (अन्नू कपूर) से कहते भी हैं कि अपनी बेटी की शाही शादी करने के लिए उन्हें उनके जैसा बनना होगा। उल्लेखनीय है कि हमारे देश की समकालीन राजनीति में भी जो वकील संसदीय राजनीति में आए हैं उन्हें निर्वाचन के समय अपनी आय का शपथपत्र देना पड़ता है। दो चुनावों के बीच उनके द्वारा दिए गए शपथपत्रों में जो उनकी आयवृद्धि प्रदर्शित होती है वह चौंकाने वाली होती है। यह आय केवल उनकी प्रतिभा के कारण ही नहीं होती अपितु इसमें उनकी राजनीतिक हैसियत की भूमिका भी होती है। इस फिल्म में यह सच भी जनता के सामने आया है कि न्याय में बार एसोशिएशन का दुरुपयोग भी सम्भव है। अपने मुकदमे के लिए न केवल गवाहों को ही धमकाया जाता है अपितु कुछ स्थानों पर तो वकीलों पर भी हमले करवाए जाते हैं।

न्याय व्यवस्था के साथ फिल्म की कहानी वकालत के कार्य में जूनियर वकीलों की दशा या कहें दुर्दशा भी बताती है जिसमें मुख्य पात्र जगदीश्वर मिश्रा (अक्षय कुमार) को वकालत की डिग्री होने के बावजूद मुंशीपुत्र होने के कारण मुंशी से अधिक नहीं समझा जाता और बड़े वकील रिज़वी साब आम तौर पर उससे बस्ता ढोने व उनकी अपनी दावतों में खानसामा का काम ही सौंपते हैं। न्याय व्यवस्था के साथ ही इस फिल्म का कथानक पूरी व्यवस्था की कमज़ोरियों को भी कई कोनों से छूता है। अपने प्रमोशन और धन के लिए पुलिस अधिकारी असली आतंकवादी को छोड़ देता है व उसके हमनाम को आरोपी बना देता है व राज़ खुलने से बचने के लिए उसे नकली एनकाउंटर में मार देता है। इस नकली एनकाउंटर को विश्वसनीय बनाने के लिए वह अपने ही एक कान्स्टेबल की जाँघ में भी गोली मार देता है जो डायबिटीज़ का मरीज़ होने व ज़्यादा खून बह जाने के कारण मर जाता है। ( ऐसा ही दृश्य फिल्म वेडनसडे में भी रचा गया था, जो नकली एनकाउंटरों में पुलिस वालों के घायल होने का राज़ खोलता है। नकली एनकाउंटर पर 'अब तक 56' जैसी फिल्में भी बनी हैं। परोक्ष में इनका सम्बन्ध भी न्याय व्यवस्था की कमज़ोरियों से है जिनके कारण पुलिस को दण्ड दिलाने में अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ता है और कुछ लोग नकली सबूत जुटाते जुटाते सौदागर बन जाते हैं) पुलिस अधिकारी सूर्यवीर सिंह (कुमुद मिश्रा) सस्पेन्ड होने के बाद अपने वरिष्ठ अधिकारी को भी धमकाता है कि उसने भी पैंसठ नकली एनकाउंटर करके ही प्रमोशन पाया है तथा अगर वह फँसता है तो उसकी भी पोल खोल सकता है। सीबीआई अधिकारी भी वरिष्ठ अधिकारी के आश्वासन पर जाँच में समय दे देते हैं और उन्हें भी इसकी कोई चिंता नहीं होती कि इस बीच में आरोपी सबूतों के साथ छेड़छाड़ भी कर सकते हैं।

छठे दशक की फिल्मों तक देश में जो वातावरण बना था उसमें समाज सुधार के लिए भी कुछ होता था। जनता को मूर्ख बना कर धन ऐंठने वाले पंडित पुरोहित हास्य के पात्र होते थे और गाँव के साहुकारों का पतन दिखाया जाता था। राजकपूर की फिल्म में ऐसे गीत होते थे जिसमें कहा जाता था कि - देखे पंडित ज्ञानी ध्यानी दया धरम के बन्दे, राम नाम ले हजम कर गए गौशाला के चन्दे, अजी में झूठ बोल्याँ, अजी में कुफ्र तौल्याँ कुई ना, हो कुई ना, हो कुई ना.....। बाद में चीन के साथ हुए सीमा विवाद के साथ ही फिल्मों में हालीवुड घुस आया व राजकपूर, गुरुदत्त, बलराज साहनी की जगह शम्मी कपूर, धर्मेन्द्र, मनोज कुमार, जाय मुखर्जी जितेन्द्र की फिल्में सतही संवेदना और क्षणिक उत्तेजना के सहारे से बाज़ार पर छा गईं। श्याम बेनेगल आदि की फिल्मों के चर्चित और पुरस्कृत होने के बाद बाज़ारू फिल्मों को आइना दिखाया गया पर बेशर्म

बाज़ार अपना काम करता रहा। अब ज़रूर ऐसा समय आ गया है कि हर फिल्म में सामंती अवशेषों पर चुटकियाँ ली जाती हैं, भले ही मुक्का न मारा जाता हो।

जगदीश्वर मिश्रा भी माथे पर तिलक लगाता है पर रिजवी साहब के यहाँ कबाब भी बनाता है तथा शराब पिला कर अपनी रूठी पत्नी को मनाता है। इसके साथ-साथ अपने छोटे बच्चे को भी जनेऊ पहनाता है और पेशाब कराते समय उसके कान पर लपेट भी देता है। न्यायाधीश महोदय अपनी मेज़ पर तुलसी का पौधा रखते हैं और उसमें पानी डालते रहते हैं। उन्हें पता है कि अदालत से बाहर वकील उन्हें टैडी बियर कह कर बुलाते हैं।

न्याय व्यवस्था की कमज़ोरियों को इसी नाम की पहली फिल्म में दिखाया जा चुका है, और उसमें कुछ भी नया नहीं जोड़ा जा सका है जबकि इससे अधिक तो शाहिद नामक फिल्म अधिक स्पष्ट थी। सच तो यह है कि यह कलात्मक फिल्म के कथानक पर बनी व्यावसायिक फिल्म है। अक्षय कुमार केवल टार्जन जैसी फिल्मों के नायक हैं, उन्हें छलाँगें लगाना आता है पर अभिनय नहीं आता। हुमा क़ुरैशी की भूमिका केवल सौन्दर्य प्रदर्शन के लिए जोड़ी गई लगती है। चींटी की तरह रेंगते न्याय की यात्रा को व्यावसायिक फिल्मों की तरह फास्ट फूड बना दिया है जो इसको यथार्थवादी फिल्म होने से रोकता है। एक लम्पट, लालची और महात्त्वकांक्षी वकील का इतनी जल्दी एक्टविस्ट के रूप में बदल जाना भी अस्वाभाविक लगता है। फिल्म के स्वरूप के अनुसार गाने अनावश्यक हैं और मेल नहीं खाते।

व्यावसायिक फिल्मों के बीच यह अपेक्षाकृत एक बेहतर फिल्म है व इसके कथानक में और अच्छी फिल्म हो सकने की सम्भावनाएँ थीं। अच्छा रहा कि फिल्म व्यावसायिक रूप से सफल रही है जिससे सुधार की सम्भावनाएँ बची रह गई हैं।

❐❐❐

2/1 शालीमार स्टर्लिंग, रायसेन रोड
अप्सरा टाकीज के पास भोपाल (म.प्र.)
462023 मोबाइल 09425674629

# आवरण चित्र के बारे में....

## गेंद वाला फोटो

पल्लवी त्रिवेदी

कैमरा एक जादुई आविष्कार है और कैमरे के कई जादुओं में से एक जादू है शटर स्पीड बढ़ाकर गति को फ्रीज़ कर देना। ये जादू बहुत लुभाता आया है मुझे और उसमें भी खासकर बहते, उछलते पानी को बीच में ही रोक देना। जिन यात्रा करती बूँदों को हम अपनी आँखों से नहीं देख पाते, उन्हें ये कैमरा नाम की अद्भुत शै दिखाती है। पानी असंख्य बूँदों का एक संसार है। अहा..नाचती, उछलती, थिरकती, बिखरती बूँदें। अनेक आकारों में ढलकर वापस पानी के साथ एकमेक होकर बहती जाती बूँदें।

1 अप्रैल 2016 की एक शाम बस जी चाहा कि कुछ वक्त इन बूँदों की अनोखी दुनिया मे बिताया जाए और एक काँच के बाउल में पानी भरकर उसमें टेनिस बॉल को डालने पर पानी के उछलने से उसके रोचक आकार और बूँदों का बिखरना क़ैद किया जाए। छोटी बहन साथ में थी तो यह प्रयोग और आसान हो गया । इस प्रकार की फोटोग्राफी में एक साथी की ज़रूरत होती है। हमारे ठीक सामने टेसू के पेड़ ने अपने फूलों का सुर्ख लाल गलीचा बिछा रखा था। हमने थोड़े फूल भी पानी में मिलाए । फिर छोटी बहन ने कई बार गेंद को ऊँचाई से पानी में डाला और मैंने करीब 1/2000 की शटर स्पीड पर ढेर सारे खूबसूरत लम्हे क़ैद किये। हर बार फूल और पानी एक साथ उछलते और साथ मिलकर एक अद्भुत छवि बनाते थे। जैसे उन्हें भी बड़ा आनंद आ रहा हो इस खेल में। उन्हीं तस्वीरों में से एक खूबसूरत तस्वीर ये है। पानी के भीतर गेंद का सुकून देता हरा रंग और पानी के बाहर टेसू का उत्साह से भरा लाल रंग। वाकई आँखों के लिए एक उत्सव ही है।

सचमुच... जो हमें दिखता है उससे भी कई गुना अनोखा और अद्भुत वह है जो हमें नहीं दिखाई देता। प्रश्न ये है कि क्या हम उस छुपे हुए को जानने की कोशिश करते हैं ? अगर कोशिश करेंगे तो बहुत कुछ अनदेखा देखेंगे, अनजाना जानेंगे। खोजने की जिज्ञासा होगी तो कितना कुछ खोज पाएँगे। अपने भीतर भी, बाहर भी। हर खोज एक यात्रा है जो अंततः खुद तक ही पहुँचाती है, खुद से ही मिलवाती है और खुद का एक और अनजाने पहलू से परिचय कराती है।

❐❐❐

एफ़ 6/17, चार इमली, भोपाल, मप्र
trivedipallavi2k@gmail.com

ख़बर कथा

# एक थी सोफिया और बिखरे सपने

**ब्रजेश राजपूत**



जेल की गाड़ी अब वापस जेल की तरफ चली जा रही थी। रास्ते में पड़ने वाले पेड़ पहले पास आते और पास आकर फिर दूर होते जा रहे थे। साहिबा की ज़िंदगी भी कुछ ऐसी ही हो गई थी। हर खुशी पहले दूर दिखती फिर पास आती और फिर दूर चली जाती थी। पूरे पाँच साल से वो जेल से अदालत और अदालत से जेल आ जा रही थी। हर बार वो बड़ी उम्मीद से जेल से निकलती और नाउम्मीदी के साथ वापस लौटती थी। मगर आज का लौटना ऐसा होगा उसने सोचा भी नहीं था। आज उसे कोर्ट ने अब ताउम्र जेल में रहने की सज़ा सुना दी थी। कितनी उम्मीद से उसका आज का दिन शुरू हुआ था। उज्जैन के भेरूगढ़ जेल में वो तड़के ही उठ गई थी। नमाज़ पढ़ने के बाद उसने अल्लाह से दुआ माँगी थी कि आज वापस ना लौटाना। वरना ग़ज़ब हो जाएगा। उसे पूरी उम्मीद थी कि कोर्ट कचहरी के चक्कर से आज उसे निजात मिलेगी। सीबीआई कोर्ट उसे बरी करने ही जा रही है यही सोचकर तो उसने रात में हाथों में मेंहदी लगाई थी। जब उसने सबिया को बाहर से मेंहदी की कोन बुलवाने के लिए पैसे दिए थे तो सबिया फारुख़ ने पूछा भी था कि ये पागलपन क्यों कर रहीं हों। अब तो सब खत्म हो गया है। पिछले पाँच साल से साए की तरह साथ रह रही साबिया की ये बात उसे कड़वी तो लगी थी मगर उसने मन ही मन दोहराया। नहीं ज़िंदगी में कभी कुछ खत्म नहीं होता। खून के रिश्ते कभी नहीं मिटते। उसे मालूम था कि उसके शौहर फिरोज़ ने अब कोर्ट की पेशी पर आना छोड़ दिया है। वो दोनों बेटियों के साथ मुंबई चला गया था जहाँ से ही उसने कारोबार सँभाल रहा था। मगर उसे अपने पर भरोसा था कि जेल से बाहर आते ही वो सबको मना लेगी। पागलपन तो उसने किया ही था और इतने सालों में उसने जेल की दीवारों के लिपटकर कई दफा इसकी माफी भी सभी से माँगी थी। उसे भरोसा था कि उसकी माफी दिल से दिलों तक पहुँच गई होगी। कितने प्यार से उसने फिरोज़ का एफ, नाजमा का एन और सायमा का एस दिल के आकार में लिख कर मेंहदी से लव यू लिखा था। सोचा था कि जब सब मिलेंगे तो उनको दिखाऊँगी और बताऊँगी कि देखो कैसे जेल में इन पाँच सालों में कभी इन तीनों को नहीं भूली मगर अफसोस ये मेंहदी अब अख़बारों की फोटो में ही छपकर रह जाएगी।

अब लगता है कि अख़बार की फोटो देखना और उनकी कतरनें काटकर रखना ही उसे ज़िंदगी भर का ये दर्द दे गया। कुश को सबसे पहले उसने अखबार में ही तो देखा था। लंबा कद, ऊँचा पूरा बलिष्ठ डील-डौल ओर उस पर मोटी मूँछें कितनी फबतीं थीं। वो देखते ही मर मिटी थी। तभी तो कुश का पहला फोटो ही उसने काटकर डायरी में रख लिया था। और सालों तक रखी रही सहेज कर। फोटो वाले कुश से उसकी मुलाक़ात इतनी जल्दी हो जाएगी उसको सपने में भी गुमान नहीं था। घर के सामने पार्क का उद्घाटन था और विधायक कुश ही वहाँ आए थे। पड़ोस की महिलाओं के साथ वो भी वहाँ थी और ये कमबख़्त नज़रें थीं जो उस पर से हटने का नाम ही नहीं ले रहीं थीं। नज़रों का पीछा करते हुए एक दो दफा नज़रें मिलीं भीं। कुश देखकर मुस्कुराए मगर वो तो अंदर तक सिहर गई थी। सोचा था अब नहीं देखेंगे मगर फिर देखते हुए कुश ने पकड़ा। ग़ज़ब तो तब हुआ जब कार्यक्रम खत्म होने के बाद कुश उतरते हुए उस तक आए और नमस्कार कर नाम पूछा। कहा पहली बार आपको देख रहा हूँ यहाँ पर। कहाँ रहतीं हैं। क्या करतीं हैं। वो लगातार सवाल पर सवाल पूछे जा रहे थे और यहाँ साँस हलक में अटकी हुई थी, जबाव देते नहीं बन रहा था। जबाव तक साबिया ने ही दिया था कि ये साहिबा हैं, पैंतीस नंबर के बंगले में रहतीं हैं पति फिरोज़ का पेटोलियम प्रोडक्ट का कारोबार है मगर ये खुद अच्छी इंटीरियर डिज़ायनर हैं। यही बात कुश को जम गई। अरे ये तो फिर हमारे काम की हैं। हमारे कॉरपोरेशन के होटलों में इंटीरियर करने वाले की हमें तलाश हैं। आप यदि हमारे साथ काम करेंगीं तो हमें खुशी होगी ये कहकर कुश ने पाकेट में हाथ डालकर पर्स निकाला और अपना विज़िटिंग कार्ड थमा दिया। उफ पसीना-पसीना हो गई मैं। बाद में सबिया को डाँटा भी भला क्या ज़रूरत थी मेरा बायोडाटा बताने की। मगर सबिया कुछ-कुछ समझ रही थी। वो मेरे दफ़्तर में पिछले दो साल से मेरी असिस्टेंट है। अच्छी तरह समझने लगी है मुझे। मेरी इस डाँट पर वो मुस्कुराकर रह गई।

दो दिन बाद सबिया ने पूछा बाजी बात की आपने। मैंने अंजान बनते हुए पूछा किससे। अरे वही अपने नेता जी से। अरे मुझे नेताजी से क्या मतलब। अरे नहीं बाजी उनके कॉरपोरेशन में बडा कांटेक्ट निकला है यदि अपनी कंपनी को मिल गया तो वारे न्यारे हो जाएँगे। आप एक बार मिलिए तो मुझे भरोसा है काम बन जाएगा। क्या मैं फोन लगाऊँ। नहीं नहीं रहने दे। लीजिए आप बात तो करिए भला बात करने में क्या हर्ज है। ये कहकर उसने मुझे फोन थमा दिया। उस तरफ से गंभीर आवाज़ आई। हलो कुश बोल रहा हूँ कहिए आपकी क्या मदद कर सकता हूँ। मैं साहिबा फिरोज़। हाँ कहिए। आपसे मुलाक़ात हुई थी। अरे हाँ फिर आपने मुलाक़ात को आगे

बढ़ाया ही नहीं। आइए कभी इस तरफ भी। ज़रूर आपके कॉरपोरेशन के इंटीरियर के कांट्रेक्ट के बारे में पढ़ा था। जी हमारा आपका कांट्रेक्ट होते ही ये कांट्रेक्ट भी हो जाएगा। कभी आइए और मिलिए। जी। अच्छा कल दोपहर तीन बजे आ जाइए। मैं हैरान थी जो आदमी फोन पर ही इतनी खुली बातें कर लेता हो वो मिलने पर मालूम नहीं क्या करेगा। बात आई गई हो गई। कुश से रूबरू तो नहीं मगर अख़बारों में रोज़ मुलाक़ात होती रही उसकी फोटो दिखती रही वही रायल लुक जो एक नज़र में ही मोह ले। तकरीबन एक हफ़्ते बाद दफ़्तर का फोन बजा। सबिया ने कहा कॉरपोरेशन से है चेयरमेन बात करेंगे आपसे। फोन उठाते ही फिर वही खनकदार आवाज़। कैसी हैं मोहतरमा। जी ठीक हूँ। लगता है आप मुझसे ख़फ़ा हो गईं। जी नहीं। फिर आप आईं नहीं। जी भूल गई। आपके लिए कांट्रेक्ट को रोक कर रखा हूँ। आप आ जाइए या फिर आपके ऑफिस भिजवा दूँ। जी मैं किसी को भेज कर बुलवा लूँगीं। अरे ये जुल्म नहीं कीजिएगा। आप आएँगी तो दो बातें भी हो जाएँगी आपसे रूबरू होकर। ठीक है कल आने की कोशिश करती हूँ। कोशिश करेंगी तो फिर नहीं आ पाएँगी आप। वायदा करिए आ रहीं हैं वरना कल मैं ही आ जाता हूँ आपके ऑफिस चाय पीने। मैं समझ गई थीं कि ये जनाब अब आसानी से पीछा नहीं छोड़ेंगे। सो मैंने कहा कल तीन बजे आती हूँ। आइएगा ज़रूर इंतज़ार रहेगा आपका। कुश के फोन रखते ही मैंने अपने दिल की धड़कनों को काबू में किया। समझ गई कि साहब लट्टू हो रहे हैं। वैसे भी मैंने उनकी कुंडली निकाल ली थी। बड़े नेता के पुत्र और राजसी ठाठ-बाट वाले कुश अपनी इस अदा के लिए जाने जाते हैं। लेडी किलर की इमेज है उनकी। अगले दिन दोपहर चार बजे दफ़्तर के नीचे बड़ी गाड़ी आकर रुकी। गार्ड ने बताया कि कॉरपोरेशन के चेयरमेन साहब आए हैं, आपसे मिलना चाहते हैं। उफ़्फ़ फिर दिल धक्क से रह गया। अब क्या होगा। दिल तेज़ी से धड़कने लगा। गार्ड को उनको लाने को कहकर मैं सामने लगे अपने आइने में चेहरा देखने लगी, दिन भर की थकान ने रंगत उड़ा दी थी उस पर बाल भी बेतरतीब थे बाल सँवार ही रही थी कि कुश की आवाज़ सुनाई दी। बस-बस रहने दीजिए बहुत ग़ज़ब लग रहीं हैं आप। जी जी। आप तो आईं नहीं तो हम ही आ गए इस कांट्रेक्ट के बहाने। लीजिए अब ये कांट्रेक्ट आपका ही हो गया है। अरे ऐसा क्यों। आपके रहते भला किसी दूसरे को कैसे दे सकता था। पहली दफा तो आपने किसी चीज़ में रुचि दिखाई वरना हमारा क्या है हम तो रूखे-सूखे आदमी कोई हममें रुचि क्यों लेगा। ऐसा नहीं है आप। अरे नहीं मोहतरमा हमारे दो बार बुलाने पर भी आप नहीं आईं। अच्छा चलिए चाय पिला दीजिए और अगली चाय का वायदा कीजिए। चाय पीकर कुश चले गए। उनके जाने के बाद तो सबिया की हालत देखने लायक थी। बाजी कुँआ खुद चलकर प्यासे के पास आया है। देर मत कीजिए इसे आज भरिए और कल जमा करवा दीजिए। बड़ा कांट्रेक्ट है वारे न्यारे हो जाएगे हमारी कंपनी के।

अगले दिन कांट्रेक्ट का फार्म भरकर कॉरपोरेशन के चेयरमेन के चैंबर में थीं। सामने कुर्सी पर कुश बैठे थे बहुत सारे लोगों से मिल रहे थे। अचानक उन्होंने कहा आप मेरे एंटी चैंबर में जाकर बैठिए मुझे वहाँ भी कुछ काम कराना है; देखिए और मुझे बताइएगा वहाँ क्या नया करूँ। तब तक मैं ये भीड़ निपटाकर आता हूँ। एंटी चैंबर क्या था अच्छा-खासा आरामदेह कमरा था। जिसमें सोफे टेबल के अलावा बेड लगा हुआ था। कुछ सुंदर पेंटिंग्स के साथ ही खजुराहो की मैथुनरत मूर्तियाँ की फोटो भी लगी थी। नेता जी की रुचियों को सोच कर कमरे में कुछ बदलाव के बारे में सोच ही रही थी कि पीछे कब कुश आकर खड़े हो गए पता ही नहीं चला। जब उनके दोनों हाथों ने मेरी कमर को घेरा तो मुझे कुछ गड़बड़ का अहसास हुआ। छटपटाकर मैंने अलग होने की कोशिश की मगर मज़बूत हाथों के आगे मेरी नाज़ुक कलाइयों ने हार मान ली। फिर क्या था कुश की गरम साँसें मेरी गर्दन, मेरी पीठ पर सुलग रहीं थीं। उसके हाथ मेरे शरीर पर हर ओर घूम रहे थे। उस पर बदहवासी हावी थी। मगर इससे पहले कि वो कुछ और अपने मन की करता मैं उससे अपने को छुड़ाकर एंटी चैंबर से बाहर आ गई और कमरे का दरवाज़ा खोलकर कार की तरफ भागी। रास्ते भर में कुश की इस हरकत के बारे में सोचती रही और अपने दफ़्तर में आकर ही मेरी जान में जान आई। शाम होने को थी दफतर के तकरीबन सारे लोग जा ही चुके थे मैं कुछ अनमनी होकर काम निपटा रही थी तभी गार्ड ने आकर बताया कि चेयरमेन साहब आए हैं। उफ़्फ़ इस वक्त। मैं समझ गई शायद माफी माँगने आए हों नेता जी या उनको डर हो मैं किसी से उनकी इस बात की शिकायत ना कर दूँ। मगर ये क्या कमरे में आते ही कुश ने कांट्रेक्ट का फार्म टेबल पर रखा और कहा आपको मुबारक हो ये कांट्रेक्ट हमारे कॉरपोरेशन ने आपकी कंपनी को ही दिया है इसलिए आ गया ये खुशखबरी देने और मिठाई खाने। गार्ड। जी साहब ये लो पैसे और मेरी गाड़ी में ड्राइवर के साथ जाकर मिठाई लेकर आओ। अब दफ़्तर में मैं और कुश अकेले ही रह गए। मैं डर रही थी मगर संयत होने की पूरी कोशिश कर रही थी। तब कुश ने कहा आप परेशान क्यों हैं कांट्रेक्ट मिलने से खुश नहीं हैं। जी नहीं ऐसी बात नहीं है। नहीं मुझे लग रहा है आप मेरी दोपहर की हरकत से नाराज़ हो गईं हैं; ये कहते हुए कुश ने अपनी कुर्सी छोड़ मेरी कुर्सी की ओर आ गया। अब मैं और वो फिर एक बार बेहद करीब थे। कुछ भी हो सकता था। मैंने उठने की कोशिश की तो कुश ने मेरे कंधे पकड़कर फिर कुर्सी पर बिठा दिया और अपने होठों को मेरे होठों पर रख दिया। अब मैं फिर बेबस और निढ़ाल थी सब कुछ उस पर ही छोड़ दिया था कब कुर्सी से सोफे पर आ गई मुझे कुछ होश नहीं। एकदम नशा सा हावी हो गया था मुझ पर भी। शुरूआती नानुकुर खत्म हो गई थी। कुश जो कर रहा था मैं उसमें बढ़चढ़कर भाग ले रही थी। थोड़ी देर में ही सब कुछ खत्म हो गया। अब वो और मैं अपने-अपने कपड़े सँभालने में लगे थे। मैडम मिठाई आ गई है। बाहर से गार्ड की आवाज़ आई। अचानक कुश उठा और ये कहकर चला गया कि मैंने तो बेशकीमती

मिठाई खा ली ये मिठाई आप स्टाफ के लोगों को बँटवा देना। धुंध के जाने के बाद मैं अजीब सी तरंग में थी। लगा कि क्या गड़बड़ कर बैठी। फिर लगा कि ये गड़बड़ ज़िंदगी के मज़े दे रही है तो क्या बुरा है। कहाँ फिरोज़ का रूखा-सूखा सा रात का थका हुआ स्पर्श और कहाँ कुश का पावर पैक पैकेज। फिर तो कुश का मेरे दफ़्तर किसी ना किसी बहाने आना जाना शुरू हो गया। वो आता अक्सर उसी वक्त जब सब जा चुके होते या जाने वाले होते। दफ़्तर का एकांत का हम मिलकर फायदा उठाते। कुश के साथ बिताए इन पलों को सहेज कर रखने की मुझ पर धुन सी सवार होती जा रही थी। मैं अपनी पर्सनल डायरी में इन पलों का जिक्र करने लगी थी तो कभी वो कंडोम भी सँभाल कर रख लेती थी जो कुश ने इस्तेमाल कर डस्टबीन में फेंका हुआ होता था। मेरे चैंबर में लगे सीसीटीवी कैमरे का उपयोग कर मैंने उन पलों की रिकार्डिंग भी करवा कर अपने कम्प्यूटर में डाल रखी थी। कुश के शहर से बाहर जाने और नहीं आने पर मैं अक्सर शाम को वो फिल्म देखती और उसे याद करती। कुश के साथ मेरे रोमांस और प्यार के दिन पंख लगाकर उड़ रहे थे। मेरे दफ़्तर में हमारी नज़दीकी को लेकर चटखारे लिए जाने लगे थे मगर मुझे इसकी परवाह नहीं थी। सच कहूँ तो कुश को कम मगर मुझे उसका ज़्यादा इंतज़ार रहता था। यदि वो नहीं आता था तो मैं उसे फोन करती। वो दो तीन नंबर रखता था और धीरे-धीरे मेरे पास उसके सारे नंबर हो गए थे। मैं उसे दिन में कई बार फोन करती जबाव ना देने पर उसे एसएमएस करती। जैसे मैं उसकी दीवानी हुई जा रही थी वैसा ही मुझे लगता था वो मेरा दीवाना हो जाए बस मेरा ही हो जाए। उसके कॉरपोरेशन के सेमीनार के सिलसिले में उसके साथ मेरा भी शहर से बाहर जाना हुआ। और हम एक होटल में रुकते सबके सामने बात नहीं करते मगर रात होते ही एक कमरे में एक पलंग पर ऐसी बेसब्री से मिलते जैसे सदियों बाद मिलें हों। इस बीच में उसके कॉरपोरेशन के कुछ कांट्रेक्ट मुझे मिल गए थे इस वजह से मेरे पति फिरोज़ भी कुश को जानने लगे थे और मुझे बाहर जाने की छूट मिल गई थी। उसके कॉरपोरेशन के कुछ पुरस्कार भी मेरे हिस्से आ गए थे। मैं समझ रही थी कि ये सब कुश की नज़रे इनायत के चलते हो रहा है मगर मेरे परिवार और दफ़्तर में मेरा प्रोफाइल बढ़ता जा रहा था।

मगर मेरे इन हसीन दिनों को जल्दी ही किसी की नज़र लग गई। कुछ महीनों बाद ही कुश का आना और मिलना कम होने लगा। फोन करने पर भी वो कम ही जबाव देता। अक्सर बिज़ी रहने की बात कह फोन काट देता। यहाँ मैं थी कि जैसे हर वक्त उसी का इंतज़ार ही करती थी। शाम को दफ़्तर के नीचे कोई गाड़ी रुकने पर सोचती थी कुश आए होंगे। हफ़्ते में तीन बार मिलने वाले हम अब दो-दो हफ़्ते नहीं मिल पा रहे थे। उधर मेरा ये तनाव मेरा स्टाफ के लोग भी समझने लगे थे। एक दिन साबिया ने आकर बम पटका। बाजी आपकी परेशानी की वजह मुझे पता लग गई। कैसी परेशानी। वो आजकल नई लड़की के जाल में फँस गए हैं। इससे मुझे क्यों होगी परेशानी। उसी लड़की ने उनको फँसाया है। ये है वो। कहकर उसने अपना मोबाइल आगे बढ़ाया। मोबाइल में एक लड़की की तस्वीर थी। मैं उस स्मार्ट लड़की की फोटो को गौर से देखे जा रही थी उधर साबिया की कमेंट्री जारी थी। ये सोफिया है, अपना छोटा मोटा काम करती है। बहुत लोगों से मेल मुलाक़ात रखती है। यही काम है इसका। लोगों को फँसाना। नेताजी अब इसके ऑफिस जाते हैं। इसके घर पर भी उनकी गाड़ी खड़ी दिखती है। वो इस पर लटटू हैं, कई बार इसके साथ दिल्ली भी गए हैं। मैंने सब पता लगा लिया है आपकी ज़िंदगी में आग लगाने वाली यही मुई है। इसे छोड़ूँगी नहीं। गोली मार दूँगी इसे। जाने और क्या साबिया बड़बड़ाए जा रही थी और उधर मैं सब कुछ लुटने के बाद की हालत में गुमसुम सी हो गई थी। फटाफट काम बंद कर घर गई और घरेलू काम में लग गई। ये देख फिरोज़ और बच्चे हैरान आज इनको क्या हो गया। मगर मेरा मन ठिकाने पर नहीं था। खाना बनाते में कई बार बर्तन गिरा तो हाथ भी जला। दरअसल छला हुआ महसूस कर रही थी। ऐसा क्यों किया उसने। क्या मुझसे जी भर गया। जो मुझमें इंट्रेस्ट नहीं बचा। बहुत सारा गुस्सा करने के बाद जब मैं सोने को गई तो नींद गायब थी। लेकिन अब मन ने पटरी बदल ली थी। सोचा क्यों मैं उसे लेकर इतनी पज़ेसिव हो गई। वो जैसा मेरा है वैसा उसकी पत्नी और दूसरी औरतों लड़कियों का भी होगा। इसमें बुरा लगने वाली क्या बात। यदि मैंने उसे उसकी चाही खुशी दी तो उसने भी मुझे खुशी दी। ये सोचते-सोचते कब आँख लग गई पता ही नहीं चला।

सुबह अच्छे मन से ऑफिस गई, काम में मन नहीं लग रहा था मगर शाम होते-होते गार्ड ने कहा साहब आए हैं। कुश अब मेरे ऑफिस में चेयरमेन से साहिब हो गया था। उसने आते ही बड़ी बेतकल्लुफी से मुझे बाहों में भरने की कोशिश की मगर मैं दूर ही रही। क्यों क्या हुआ। देखो नाराज़ ना हो। आजकल काम बहुत आ पड़ा है इस कारण बहुत दिनों से यहाँ नहीं आ पाया। अब आ गया हूँ तो निराश मत करो आ जाओ पास। ये कहकर फिर उसने हाथ बढ़ाया। अब मेरा पारा चढ़ गया था। काम है या कोई और तलाश कर ली। अरे ये क्या कह रही हो। वो सोफिया कौन है। अब हैरान होने की बारी कुश की थी। किस सोफिया की बात कर रही हो। जिसके घर सुबह शाम जाते हो। अरे वो तो क्लाइंट है जिसे कॉरपोरेशन में काम चाहिए। ऐसी तो बहुत लड़कियाँ आती हैं। तो मुझे बताओ और किस-किस लड़की के घर जाते हो। अरे कहीं नहीं। घर दफ़्तर और बस तुम। मगर बात यहीं नहीं रुकी बहुत देर तक तकरार होती रही हम दोनों के बीच में। कई बार कुश ने मुझे पास खींचना चाहा और मेरे पास आना चाहा मगर मैंने मौका नहीं दिया और कुछ देर बाद वो नाराज़ होकर पैर पटकता चला गया।

उसके बाद कुश ने तकरीबन आना ही छोड़ दिया। हाँ एक दो बार फोन पर बात करने की कोशिश की मगर मैंने ही उसे भाव नहीं दिया। इस बीच में साबिया रोज़ नई-नई जानकारी दोनों के बारे में मुझे देती रही। कुश, सोफिया के एनजीओ के कार्यक्रम में

चीफ गेस्ट बना। कुश और सोफिया किस होटल में दिखे। कुश और सोफिया कब एक साथ इंदौर गए कहाँ रुके। अब अख़बारों में कभी-कभी कुश के फोटो सोफिया के साथ भी छपने लगे थे। ये सब देख सुनकर मेरा खून खौलना शुरू हो गया था, मेरी सारी समझदारी एक तरफ होती जा रही थी। अब सोफिया मुझे दुश्मन के समान लगने लगी थी। लगने लगा था कि कुश को उसने मुझसे छीन लिया। उसकी मुस्कुराती फोटो मेरा खून खौला देती थी। ऐसे में रोज़ साबिया की बातें मेरा गुस्सा बढ़ाती थीं। फिर रास्ता भी साबिया ने ही सुझाया। बाजी क्यों ना इसे निपटा दें। एक दिन वो अचानक मुझसे बोली। मैं चौंक गई। ये क्या बोल रही हो तुम। बाजी सच कहें अब तो मुझे वो जानी दुश्मन लगने लगी है। आप मानों या ना मानों मैं उसे गोली मरवा दूँगी। उसने आपकी ज़िंदगी नरक कर दी है। मेरे और परवेज़ के ठंडे रिश्तों के बाद कुश के साथ आई गर्मजोशी ने मुझे बदल दिया था और अब फिर अचानक सोफिया ने आकर मेरी ज़िंदगी फिर वीरान सी कर दी थी ये बात साबिया महसूस कर रही थी। उधर कभी कभार कुश मुझसे बात करने की कोशिश करता मगर मैं भी अजीब ज़िद पर अड़ी थी मैं उसे सोफिया के बिना ही चाहती थी इसलिए उसका फोन ही नहीं उठाती। बाजी पचास हज़ार रूपये दो। ये साबिया की आवाज़ थी। क्यों तुझे क्यों चाहिए इतने पैसे। आपका एक काम करना है। कौन सा। मुझे उस कलमुँही को रास्ते से हटाना है। मैं हँस पड़ी उसका गुस्सा देखकर अच्छा इतने सस्ते में। अब महँगा सस्ता क्या बस आप पैसे दे दीजिए और ये समझिए ये पैसे आपने मुझे उधार दिए है जो बाद में वापस कर दूँगी। मुझसे वो ज़िद कर पैसे ले गई। बाद में मुझे पता चला कि उसने ये पैसे परवेज़ के पेट्रोल पंप पर काम करने वाले आबिद को दिए थे। आबिद थोड़ा बदमाश था और उसके रिश्तेदार कानपुर में रहते थे। परवेज़ ने उसे दूसरे नौकरों को डराने धमकाने के काम के लिए ही रखा था। साबिया ने उससे कुछ बात की थी। जो उसने मुझे कभी नहीं बताई। एक दिन साबिया ने मुझे बताया बाजी अब आपको जल्दी ही चैन आएगा। बस थोड़े पैसे और चाहिए और इस बार वो मुझसे डेढ़ लाख रुपये ले गई ये कहकर कि अब आगे कुछ नहीं माँगेगी।

समझदार होने के साथ ही मेरी डायरी लिखने की आदत सी बन गई थी। जो शादी के बाद कम हो गई थी। मगर कुश की करीबी के दिनों में मैंने अपने जज़्बातों पर खूब लिखा। मेरे और कुश के साथ के वो खुशी के मौके, मिलन की बातें, वो उत्तेजना के क्षण, वो कभी नहीं भूलने वाला अहसास, वो शरीर की भूख, आत्मा की तृप्ति के बाद फिर मिलने की चाह, क्या ये वासना थी या मेरा प्यार था या फिर कुछ और, मैं ये सारी बातें अपनी डायरी में लिखती थी इसमें मैंने साबिया की उन बातों को भी लिखा जिसमें उसने मुझे सोफिया से छुटकारा दिलाने की बात कही थी। मुझसे पैसे लेकर गए साबिया को दो हफ़्ते हो गए थे एक दिन मैंने उससे पूछा क्या हुआ तुम्हारी जानी दुश्मन का। तो उसने कहा बाजी चिंता ना करो, इंशाअल्लाह आने वाले जुमे को आपको खुशखबरी दूँगी। वो दिन हमारे लिए मुबारक होगा तय मानिए। बस अब मैं मन ही मन जुमे का इंतज़ार करने लगी। और जुमा आ ही गया। साबिया उस दिन दस बजे ही घर आ गई। कहा बाजी तैयार हो और गाड़ी निकालो। मैं घबड़ा गई मैंने उसका हाथ पकड़ा और कहा क्या उसे मारने चल रही हो। वो मुस्कुराई कहा आपकी बहन ने कच्ची गोटियाँ नहीं खेलीं हैं बस चलिए आप आपको एक ऐसी आवाज़ सुनानी है जो ज़िंदगी भर आपके कानों में घंटियाँ बनकर गूँजेगी। मैंने अपनी कार निकाली और साबिया के साथ चल दी। कुछ गलियों में घुमाने के बाद साबिया ने इशारा किया और कार एक मैदान के पास रोक दी गई। वो बार-बार घड़ी भी देख रही थी। कार का एफएम बंद करवा दिया गया था। कुछ बोलने पर वह होंठों पर हाथ रखकर चुप रहने का इशारा करती। तकरीबन बीस मिनिट चुप बैठे रहने के बाद भी मुझे कुछ समझ नहीं आ पा रहा था। तभी एक ज़ोर की आवाज़ हुई पटटट..... मैं चौंक गई ये क्या हुआ, चौंकी तो साबिया भी मगर चंद क्षणों बाद ही उसके चेहरे पर मुस्कुराहट थी। मेरा हाथ को दबाकर वो बोली हमारा काम हो गया बाजी अब दफ़्तर चलो। पूरे रास्ते हम चुप थे। मैं बदहवासी में गाड़ी चला रही थी कुछ-कुछ मुझे अंदेशा होने लगा था कि क्या हुआ होगा कई बार साबिया ने मेरा हाथ दबाकर कहा बाजी ईजी इतना ना घबड़ाइए। दफ़्तर पहुँचते ही उसने तुरंत न्यूज चैनल लगा दिया और काफी बनाने लगी। तकरीबन आधे घंटे बाद एक चैनल पर ख़बर चलती दिखी। गोली चलने की ख़बर। थोड़ी देर बाद ही ये ख़बर बदली महिला को गोली मारी। मेरी ओर साबिया की बैचेनी बढ़ती जा रही थी। ये खबर थोड़ी देर बाद और बदली अब लिखा आया कार में बैठी महिला की गोली मारकर हत्या। मरने वाली का नाम सोफिया। ये देखते ही साबिया ने ताली बजा दी और उठकर मुझसे झूम गई। बाजी कहा था ना कि जुमे के दिन ही काम होगा लो हो गया। उधर मैं समझ नहीं पा रही थी इस बात पर खुशी जाहिर करूँ या दुख। आख़िर एक महिला की हत्या हुई थी। उसे किस गुनाह की सज़ा दी गई। सिर्फ इस बात पर कि वो भी उस कुश को चाहती थी जिसे मैं भी चाहती थी। आख़िर उसे भी तो किसी को भी पसंद करने का हक था। उसकी पसंद कुश ही निकली तो क्या उसे मौत की नींद सुला दिया जाएगा। और वो पागल तो थी नहीं कुश भी तो उसे चाहता ही होगा। कुश को पाने के लिए ऐसे मैं किस-किस को रास्ते से अलग करूँगी। हत्यारी हो गई हूँ मैं। भले ही गोली मैंने नहीं चलाई तो क्या चलवाई तो है। आज नहीं तो कल पुलिस तलाशते हुई आएगी और मुझे पकड़ कर ले जाएगी। तभी मेरे हाथों पर किसी की पकड़ मजबूत हुई और ये साबिया की ही आवाज़ थी बाजी चलिए जेल आ गया। इंदौर से उज्जैन जेल के इस पैंतालीस किलोमीटर के रास्ते में मेरे ज़िंदगी के कई साल आँखों के सामने गुज़र गए।

❑❑❑

ई-109/30, शिवाजी नगर, भोपाल,
brajeshrajputbhopal@gmail.com
मोबाइल 9425016025

# प्रेम, उदासी और इंतजार की अन्त:यात्रा

**( संदर्भ: उजली मुस्कुराहटों के बीच - विमलेश त्रिपाठी )**

**डॉ. शिवानी गुप्ता**

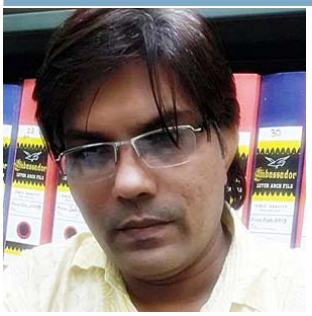

इश्क़ है तर्ज ओ तौर इश्क़ के तई
कहीं बंदा कही ख़ुदा है इश्क
कौन मक़सद को इश्क बिन पहुँचा
आरज़ू इश्क़ वा मुद्दा है इश्क
मीर जी ज़र्द होते जाते हैं
क्या कहीं तुमने भी किया है इश्क़?
(मीर-तकी-मीर)

इश्क प्रेम, मुहब्बत - इंसान की सबसे खूबसूरत भावनाओं में सर्वोपरी और दुनिया के हर इंसान की नब्ज़। मीर भी इसीलिए इसे मकसद, मुद्दा और आरज़ू मानने को विवश दिखते हैं। दुनिया की कोई भी कविता इसके बिना अपूर्ण है और इसीलिए शायद कविता के इतिहास में प्रेम का बहुत बड़ा बाज़ार देखा जा सकता है। बाज़ार इसलिए कि प्रेम का कोई एक खरीदार नहीं जिसके हाथ जो लगा उसी का इतिहास निर्मित हो गया। लेकिन दुनिया को खूबसूरत बनाने वाला यह प्रेम अपने भीतर त्रासादियों का भी इतिहास समेटता है। ''सैनी अशेष'' की यह पंक्तियाँ इस नाज़ुक से भाव की हक़ीक़त बयानी कुछ इस प्रकार रखती है ''मुसव्विर जब प्रेम के तसव्वुर को लिबास पहनाता है तो उसमें अपने प्राण ही डाल देता है। पत्थर में जान डालते हुए सारे हथौड़े दरअसल उसी पर पड़ते हैं, सारी छेनियाँ उसी को छीलती हैं। अपने महबूब को पाना खुद को नया बनाने का बहाना ही तो है। मगर इस सफ़र में जितने जख़्म मिलते हैं, शायद ही कहीं और मयस्सर हों। ऐसी कोई शक्ति कहीं कैसे हो सकती है, जिसके हाथ में पहले से सब बना बनाया रखा हो? नित-नूतन यूनिवर्सल हक़ीक़तें बताती है कि इस दुनिया को खूबसूरत बनाने में सबसे पहले प्रेम की जान जाती है और आने वाली मिट्टियों में रच-बस जाती है। प्रेम में पड़ते हुए स्त्री और पुरुष जब तक हार्दिकता और सम्पूर्ण के तल पर एक नहीं हो जाते, एक खटका बना रहता है पता नहीं कब किस कारण उनके बीच दारद पड़ जाए। सहसा ऐसा हो भी जाता है। एक गहरा आघात लगता है जिसे किसी आँसू किसी इबारत या किसी किताब में बयान नहीं किया जा सकता। जो शख़्स हमें ताज़िंदगी भीतर तक अपना लगता है उसने मिले जख़्म की शिकायत किससे की जाए? इस योग्य कहीं कोई दिखाई नहीं देता। निकटतम दोस्त भी नहीं। हम खिसियाकर तब रह जाते हैं, जब देखते हैं कि यहाँ तो क़ातिल को ही पता नहीं है कि उसके हाथों आपका खात्मा हो गया है सबसे बड़ी मुश्किल यह है कि आपके साथ हुए इस जानलेवा हादसे में स्वयं आपका ही हाथ बड़ा होता है। एक सदमा लगता है जिसे झेलना ही नहीं जीना भी होता है। प्रेम के इस कड़वे सच को नकार पाना सम्भव नहीं और इसी सच की बयानी अलग-अलग तरीकों से कवि हृदयों से प्रस्फुटित होती रही है।

समयकाल बदलता रहा और साथ ही बदलता रहा प्रेम के भीतर का माधुर्यभाव उसकी अभिव्यक्तियों का स्तर, जिसमें आधुनिकता के भीतर उपजे यन्त्रवाद और बाज़ारवाद की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। लेकिन यन्त्रवाद और बाज़ारवाद में डूबा प्रेम किस कदर संवेदनहीन होता गया है यह भी देखा जाता रहा है ख़ैर, मामला प्रेम के संदर्भ में कभी इतना आधारहीन होता नहीं ''एक लम्हे के भीतर जन्म लेता है प्रेम और सदियों तक जीता है लोकगीत की तरह'' वन्दना खन्ना की यह पंक्तियों प्रेम की गहरी संवेदनशीलता के लिए काफी है।

हिन्दी साहित्य में प्रेम कविताओं का दौर हर काल का हिस्सा रहा है। युवा कवि भी इससे अछूते नहीं लेकिन प्रेम जैसे विषय पर कविता करना संवदेनशीलता को तमाम ख़तरों को चुनौती देने जैसा है यह डगर इतनी रपटीली है कि प्रेम करना और प्रेम लिखना दोनो की एक ही ज़मीन मालूम होती है। इन्हीं युवा कविओं में नाम आता है विलमेश त्रिपाठी का अपने दो कविता संग्रहों ''हम बचे रहेंगे'' और ''एक देश और मरे हुए लोग'' के बाद अगले संग्रह ''उजली मुस्कुराहटों के बीच'' के साथ विमलेश प्रेम की दुनिया में प्रवेश करते हैं। दो भागों में बँटा संग्रह ''आखर रह जाएँगे'' और ''बीच की ढलानों पर कहीं'' में विमलेश प्रेम की महीन बुनावट के साथ-साथ व्यक्ति से समष्टि की ओर जाते दिखते हैं। यह कितनी बड़ी बात है कि प्रेम जैसा नितान्त नीजी विषय दो व्यक्तियों के भावात्मक रिश्तों से आगे बढ़ता इतना व्यापक रूप इख़्तियार करता है कि उसमें विश्व की समूची मानवता और उसके भीतर रिसता प्रेम प्रकट होने लगता हैं। विमलेश के इस संग्रह की सबसे बड़ी ख़ासियत यही उभर कर आती है।

''जहाँ तुमने लिखा है प्यार/वहाँ पृथ्वी लिख दो/प्यार का एक हक़/ऐसे भी कर दो अता।'' प्यार का एक हक ऐसे भी अता कर दो कि प्यार की जगह पृथ्वी लिख दो - कहने वाला यह प्रेम का कवि अपने संग्रह 'उजली मुस्कुराहटों'' के बीच के साथ प्रेम को ऐसे गुनते-बुनते चलता है मानों दुनिया को बचा लेने के लिए यह कविता का आवश्यक कर्म ही नहीं बल्कि मनुष्यता का आवश्यक कर्म भी है। प्यार एकांगी पक्ष है लेकिन प्यार को पृथ्वी में तब्दील कर उसे अनेकांगी बना देना प्रेम का विस्तार तो है और वही बात है

इसमें मनुष्यता के पक्ष को बड़ा कर देने की। संग्रह को दो भागों में विभक्त कर कवि जब पहले भाग ''आखर रह जाएँगे'' से जुड़ता है तो कविताओं के भीतर प्रेम एक धीमी आँच पर तपता हुआ धीरे-धीरे व्यापक होता जाता है। विमलेश के लिए प्रेम केवल स्त्री-पुरुष की अनुभूति से ही नहीं जुड़ता बल्कि सृष्टि के भीतर रचे बसे प्रेम से भी जुड़ता है और सबसे दिलचस्प यह कि विमलेश की प्रेम कविताओं में स्त्री खाँटी प्रेमिका के रूप में नहीं उभरती बल्कि वह सामाजिक औरत की शक्ल के साथ आती है। वह कहीं शोषित है तो कहीं ममत्त्व से भरी नायिका है तो कहीं सखी। ''तुम्हारे लिए एक कविता'' की प्रेमिका के लिए ''एक सुन्दर आँख एक सुन्दर नाक/एक बहुत सुंदर दिल'' गढ़ते हुए कवि लिखना चाहता हूँ ''तुम'' जब गढ़ता है यह ''तुम'' की अर्थ ध्वनि एकवचन होकर बहुवचन में कितनी खूबसूरती से तब्दील होती जाती है जिसे एक स्त्री के जरिये हम सम्पूर्ण स्त्री समाज के दमित-शोषित रूप से जोड़ते चले जाते हैं यथा- ''तुम जिसे बहुत पहले आदमी की तरह होना था तुम जिसे खुलकर हँसना/और बोलना था/देना था आदेश लेना था कठोर निर्णय अपने और इस पृथ्वी के लिए/तुम जिसे देख इतिहास को आती है शर्म/... तुम जो सुरक्षित नही हो घर और बाहर कहीं भी/तुम जिसको दुनिया ने मनुष्य से/एक चारे में तब्दील कर दिया है। ...देखना चाहता हूँ तुम्हें/अब और कुछ नहीं/सिर्फ और सिर्फ एक मनुष्य।'' हाँलाकि यह पंक्तियाँ पढ़ एकबारगी यह सवाल उठता है कि यह प्रेम कविता है अथवा स्त्री विमर्श? लेकिन थोड़ा ठहर कर सोचें तो लगता है एक प्रेमी की अपनी प्रेयसी के लिए प्रेम के साथ एक सुरक्षित ज़मीन की तलाश करना या अपने सारे अपराधों को स्वीकार कर उसे एक मनुष्य के रूप में देखना क्या बड़ी और महत्त्वपूर्ण बात नहीं? जबकि प्रेम में एकाधिकार करता व्यक्ति अपने प्रेमी की सामाजिकता का उतना ख्याल नहीं रखता। इसी प्रकार यह कविता ''इस दुनिया की तरह'' में भी जब कवि कहता है'' इतनी हिंसा इतने युद्ध इतनी नफ़रत/के बीच/जहाँ कभी भी मौत की आहट का अंदेशा/ऐसे में मेरे हमदम/दुनिया सुन्दर बनी रहे/इसलिए चलता हूँ रोज़ एक कदम/क्योंकि मैं इस दुनिया की तरह ही/तुम्हें करता हूँ प्यार। रोज़ एक कदम चलकर दुनिया को सुन्दर बनाना और अपने प्रेम को इस सुन्दर दुनिया में बनाए रखने का अर्न्तगुम्फन बेमिसाल है। सच ही है कि प्रेमी युगलों के बीच भावनाओं का जो सेतु विस्तार पाता है उसमें बहुत कुछ अनकहे शब्दों में गुँथे और बहुत कुछ कहे शब्दों में गुँथे सम्बन्ध होते हैं जो एक मिश्रित भाषा का निर्माण करते हैं जिसे समझने के लिए किसी भाषाविद की नहीं, बस एक संवेदनात्मक हृदय की ज़रूरत होती है और यह हृदय उन्हीं प्रेमी युगलों में धड़कते है जिन्होंने इस भाषा का निर्माण किया होता है। विमलेश ऐसी ही एक भाषा रचते हुए कहते है ''शब्दों के महीन धागे हैं/हमारे संबंध/कई-कई शब्दों के रेशे-से गुँथे/साबुत खड़े हम/...और इस तरह साथ मिलकर/एक भाषा हैं हम/एक ऐसी भाषा/जिसमें एक दिन हमें/एक महाकाव्य लिखना है''। यह महाकाव्य प्रेम का ही हो सकता है ऐसी सम्भावना प्रकट करता कवि अजीब है कि आवश्वस्त नहीं दिखता अपनी इस भाषा से और यहीं हमे लगने लगता है कि प्रेम किसी आश्वस्ति में स्थाई हो जाने वाली प्रक्रिया है भी या नहीं? या अधिक सम्भावना यह कि जीवन की यात्रा के हर मोड़ पर भाषा के नवीन निर्माण के साथ प्रेमी युगल उस अपनी निर्मित भाषा को एक-दूसरे में आत्मसात करने को प्रतिक्षारत यात्री रहते हैं? इसी की अगली कड़ी में मैं ''देह की भाषा'' कविता को जोड़कर देखती हूँ। मन और देह भावानुभूतियों के दो महत्त्वपूर्ण चरण हैं। मन की भाषा जहाँ चूकती है वहीं मुखर होती है देह की भाषा। जब विमलेश कहते है ''देह की अपनी एक भाषा /अपना एक व्याकरण /जब अन्य भाषाएँ हो उठतीं / कंटीली झाड़ियों की तरह जटिल/इतनी कि निकल पाना/करीब-करीब नामुमकिन..... तो यह उसी चूक चुकी भाषा की ओर संकेत है जिसका उपरोक्त कविता में ज़िक्र है और यह शास्वत सत्य है कि प्रेम की परिणिति मन से होती हुई देह में ही रूपान्तरित होती है इसलिए प्रेम करता हृदय न केवल एक-दूसरे में मन की भाषा का निर्माण करता है बल्कि एक-दूसरे के लिए देह की भाषा को भी गढ़ता है ताकि ''दो स्वत्त्वों के बीच आकाश जितना भारी एक मौन'' जो ''पसर जाता'' है उसे ''देह भाषा में'' फूटती कविताओं द्वारा ''हर बार बचा'' लिया जाए।

प्रेम किस तरह समाज के उन उपेक्षितों से जुड़ता है जिनके लिए प्रेम के मायने स्त्री-पुरुष नहीं प्रेम के मायने पेड़, खेत, नदी हैं जिसे ''अब तक लिखा नहीं'' कविता में। विमलेश मानते हैं- प्रेम भावानुभूतियों का समंदर होना चाहिए जिसमें प्रेम करता हृदय उन सभी से तादात्मय अनुभव करता है जो ठुकराए गए हैं और जिन्हें ही सबसे ज़्यादा प्रेम की ज़रूरत है। इसीलिए वे कहते हैं ''प्रेम लिखना है/आओ मेरे होंठ पर एक वर्ण आँक दो''.... होंठ पर वर्ण आँकने का तात्पर्य उस निरन्तरता से है जो वर्ण-वर्ण मिलकर शब्द, शब्द-शब्द मिलकर एक वाक्य में बदलते हैं और रचते हैं एक इतिहास मानवता से प्रेम का। जरा देखिए एक कवि हृदय प्रेम की गहरी पड़ताल में डूबता हुआ जब कहता है ''समंदर नहीं लिखना पहाड़ नही लिखना/गाँव की वह नदी लिखनी है/जो अब सूखने के कगार पर है'' तो उस सूखे का अनुभव वह खुद के भीतर इस कदर करता है कि प्रेम के बादलों का आह्वान करता हुआ आग्रह करता है ''आओ मेरी देह पर बारिश की बूँद की तरह झरो'' ताकि मेरे भीतर वह जो गाँव की नदी बहती है वह सूखे नहीं। इतना ही नहीं उसे ''अन्न नहीं लिखना खेत नहीं लिखना/किसान लिखना है/जिसके घर का चूल्हा चार दिन से उदास/कि मृत्यु ही जिसके लिए अंतिम एक आत्मीय आगोश।'' क्या प्रेम करता हृदय जीवन की प्रवाहमयता से इतना गहरा जुड़ता है कि अपने हिस्से के बहते जीवन के साथ वह दूसरों के हिस्से के जीवन के बहाव की भी फिक्रमंदी कर सके? शायद प्रेम कविताओं में इसकी सम्भावना कम होती है और आप देखिए कि ''आओ मेरी त्वचा पर जीवन की तरह बहो/..आओ मेरी स्याही में चुपचाप घुल जाओ पिघल कर/.....आओ मेरे हृदय में मशाल की तरह जलो/.....आओ मेरे खुरदरे काँपते हाथ गहो'' तक आते-आते कवि जब यह

कहता है ''कविता नहीं/ एक स्त्री का नाम लिखना है अपने नाम के ऊपर/और सदियों से खड़े/ इतिहास के एक पवित्र किले को ध्वस्त कर देना है''.... तो सच ही वह धर्म के पवित्र इतिहास पर करारा प्रहार कर रहा होता है - अपने नाम के ऊपर स्त्री का नाम लिखकर। एक गाँव, किसान, देश और देश के भीतर स्त्री इन तमाम शोषितो की पीड़ा का विस्तृत फलक प्रेम करते हृदय में आत्मसात होना इंसान के भीतर प्रेम की एक पायदान ऊँची ज़मीन का निर्माण करने जैसा है। ''तुम हे स्त्री'' के अलविदा का गीत गाते हुए भी कवि कुछ इसी भाव से भरा दिखता है लेकिन विदाई के उस सच को कहता हुआ ''लेकिन हे स्त्री/जाकर भी कोई कहाँ जा पाता है/वह रह ही जाता थोड़ा/फिर फिर लौटता.....।'' उम्मीद प्रेम को टूटने नहीं देता - दूर जाकर भी प्रेमी-हृदय दूर नहीं जा पाते। ''आओ मुक्त हो जाएँ'' इंतज़ार के भीतर प्रेम और प्रेम के भीतर बसे एक घर के सपने की कविता है जो अक्सर प्रेमी हृदयों के फैंटेसी में बनी ही होती है। ''किसी को पूरे समर्पण से चूमना'' प्रेम की कोपलों के फूटने की कविता है, जिसमें प्रेम प्रथमत: एक-दूसरे के भीतर अपने विशेष रोमांच के साथ कदम रखता है, मन की सूखी नदी में प्रेम का पानी बहते ही आनन्द की फसलें लहलहाती है और वातावरण में सब कुछ संगीतमय लगता है। लेकिन प्रेम होना या करना इतना सहज भी नहीं पाबंदियों की दीवारें केवल समाज की ही नहीं होती खुद अपने-अपने हृदयों की भी होती है और प्रेम को प्रथमत: इसी का सामना करना होता है कवि कहता है ''पाबंदियाँ सबसे पहले मन से खत्म होती हैं मेरे महबूब/और आजादी का सूरज/सबसे पहले अंधेरे मन में चमकता है/'' ..... और सच है प्रेम करना खुद को खुद से मुक्त करना ही तो है।

कुछ छोटी-छोटी कविताओं के जरिये विमलेश प्रेम की संवेदनाओ को बेहतर तरीके से छूते है जैसे ''तुम्हारा प्यार/बुरे दिनों में आई/राहत की चिट्ठियाँ है.....तुम्हारा प्यार/लहलहाती गर्मी में/ एक गुड़ की डली के साथ/एक ग्लास पानी है।'' या ''बारिश की बूँदों में झरती है

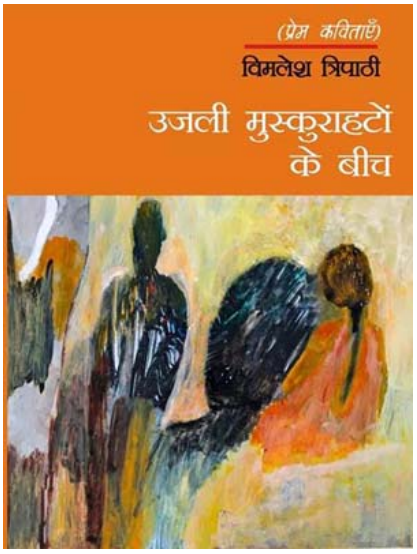


स्मृतियाँ/ रेत-सा जीवन भीगता है/फिर फिर उमड़ता है/छूट गया प्यार'', या ''रात अँगुरी में काली नागिन की तरह डस लेती है/दिन बिच्छु सा डंक मारता है/तुम कभी रात हो/ दिन हो कई बार तुम ही'' या ''तुम यदि एक सरल रेखा/तो ठीक उसके नीचे खींच देता/एक छोटी सरल रेखा/फिलहाल इसी तरह परिभाषित करता/तुमसे अपना सम्बन्ध।'' इन तमाम पंक्तियों में कहन का अनोखापन प्रेम की तरलता में डूबोता-सा प्रतीत होता है।

प्रेम में भावों के कई रूप एक साथ उतरते-चढ़ते हैं - खासकर प्रेमी-पुरुष के भीतर प्रेमिका-स्त्री कई रूपों में उभरती है। विमलेश की कविताओं में पुरुष-प्रेमी के यह भाव कई तरह से देखे जा सकते हैं यथा- ''एक हर्फ हो तुम जिसे खोजता फिरता रहा/और अंतत: मिले तुम/जैसे मिला हो बच्चा दिन उलटकर/इस पैंतीस की उम्र में/मिले हो तो धूप में गुड़-सा मिठास/हवा में दादी के हाथों के स्पर्श-सी सिहरन/नदी में सावन-भादों का पानी।'' पैंतीस की उम्र का प्रेमी जब प्रेम में दादी के हाथों के स्पर्श की सिहरन महसूस करे तो इसे प्रेम में ममत्व की अधिकता की समझा जा सकता है। सुकून की वह छाँव जिसके होने से जीवन का दबाव बेफिक्री में बदल जाता है। ''कभी जब खूब तनहाई में तुम्हें आवाज़ दूँ तो सुनना/जब हारने लगूँ लड़ते-लड़ते/तो खड़ा होना मेरे पीछे/दुआओं की तरह/पर जब नफ़रत करने लगूँ इस दुनिया से/तुम सिखाना/ कि यह दुनिया नफ़रत से नहीं/ प्यार से ही बची रह सकती है'' और ''तुम समझ सकती हो अंजना माइती/मेरे भीतर बैठे बच्चे को?/तुम जब बोदका के नशे में गालिब के शेर बोलती हो तब भी एक बच्चा ही होता हूँ मैं सुनते हुए/मुझे कई बार शब्द नहीं समझ आते/हाथ पर रखे तुम्हारे हाथ की गरमाहट समझ में आती है।'' स्त्री जाति से मिलने वाली यह साकारात्मक ऊर्जा प्रेम और अपनेपन की गरमाहट से हमेशा मनुष्यत्व पर भरोसा कायम रखना सिखाती है। ''सिगरेट और प्यार'' जैसी कविता में इंसान के भीतर के कुट सैलाब को बड़ी बेफिक्री के साथ लेकिन गम्भीर अंदाज़ में एक मुकम्मल सच से कवि जोड़ता है कि ''दोनों ही/मार देते है धीरे-धीरे.../इस एक जगह/जान-बूझ/मरना चुनते है हम/और हमे दुख: नहीं होता'' और सच तो यही है भी कि प्रेम अन्तत: एक दर्द का सैलाब ही लाता है - मृत्यु तुल्य और सिगरेट के धुँएँ में मृत्यु की दस्तक की तरह, फिर भी हर इंसान इसे जीना चाहता है ''सिगरेट और प्यार'' की तरह।

इस खण्ड में दो लम्बी कविताएँ भी शामिल है जिसपर बातें कर लेना भी ज़रूरी है। ''प्यार पर कुछ बेतरती बातें'' और ''कॉलेज की डायरी से''। एक से छ: चरण में अभिव्यक्त हुई ''प्यार पर कुछ बेतरतीब बातें'' इस संग्रह की सबसे उम्दा कविताएँ मानी जा सकती हैं। विमलेश ने प्रेम को जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं और खुशियों से जोड़कर जितना व्यापक बना दिया है वह अन्यतम है। खास यह कि न तो किसी स्थिति-परिस्थिति के निर्माण की आवश्यकता बनी है और न ही कोई भारी भरकम शब्दों के प्रयोग की जरूरत। नाउम्मीदी कितनी सहजता से उम्मीद में भी तब्दील हो जाती है विमलेश ने इसे बखूबी उभारा है और उसे प्रेम के गहरे अपनेपन से जोड़ दिया है यथा ''एक बच्चे की हँसी/ हाथ में उसके पंसद का खिलौना/पिता के चेहरे का गर्व/बेटे जीत जाने की एवज में/ कवि की पूरी हो गई कविता/माथे का सुकून/ खूब तनहाई में/बज उठी फोन की घंटी/ भीषण-सूखे में उमड़ आए/ काले-काले बादल/प्यार तुम्हारा कुछ-कुछ वैसा।''

''खूब बेरोज़गारी के दिनों में/नौकरी

मिल जाने की चिट्ठी/.....ठीक चार बजे/बजी गुड़ की डली-सी मीठी/स्कूल की छुट्टी की घंटी/बीमार माँ का उतरा बुखार/बहन की हथेली पर चढ़ी मेंहदी/गाँव में आई अनाज की गाड़ी/शाम ढोलक की थाप पर/पूरवी सोहर-मेहीनी/धीमे-धीमे गाँव की अलसाई रात में भिनती/प्यार तुम्हारा कुछ-कुछ वैसा''

''सबसे अच्छी किताब की/सबसे अच्छी कविता/एक पहला-प्रेम पत्र/नाखून से खुरचकर लिखा हुआ/याद रह गई/पुरानी ग़ज़ल की एक बंद/और प्यार तुम्हार कुछ कुछ वैसा।''

''छत पर उगा लौकी का सफेद फूल/गेंदे की हरी पत्तियों में/छुपा एक चटक पीला फूल/खूब ज़ोर की आँधी बाद भी/बचा रह गया/अमरूद का एक बहुत छोटा पौधा/और प्यार तुम्हारा कुछ-कुछ वैसा।'' रिश्ते, सम्बन्धों की तमाम सोंधी गंध, गाँव, शहर के बीच रीति-नीति की सीढ़ियाँ, संस्कृति की झलक में रचा बसा यह प्रेम सभी के हृदयों पर दस्तक देगा ही।

''कॉलेज की डायरी से'' लम्बी कविता में विमलेश ''नौ'' चरणों में भावनाओं के ताने-बाने को बुनते है जिसमें प्रेम के कई शेड्स सिगरेट के धुँए के साथ कानाफूसी करते रोमानियत का एक वितान रचते हैं। दिल की बात अपने प्रिय तक पहुँचने का सुकून और उस सुकून से अपजे कल्पित लोक में विचरण का सुख -

(एक) ''चलो सदियों बाद/एक सिगरेट सुलगाते है/और समय की नब्ज़ को/रोक देते है/हँसते और जीते है कुछ देर/बेखौफ/और खौफ के बीच हम और तुम''। ''कॉलेज की डायरी से'' शीर्षक का सीधा सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन में प्रथमत: प्रेम के साथ एक परिपक्व स्थाई भाव का आगमन है जब युवा जीवन में किसी के साथ चलने को चुनता है। उसके इस चुनाव में एक उमंग के साथ साहस भी होता है अपने लिए नई और अलग पगडंण्डी के निर्माण का -

(चार) ''इतिहास की दहलीज़ पर हमें/भी दर्ज करने थे/अपने कोमल पैरों के निशान/हमें भी लिखनी थी मिलकर कोई एक कविता/एक-दूसरे के निर्दोष आसमान-सी/अपनी रफ कॉपियों में - ''यह रफ कापियाँ ज़िंदगी के सवाल जवाबों से टकाराती हुई ही एक सही-बही खाते का निर्माण कर पाती है। प्रेम एक सुख की छाँव के साथ संघर्ष के क्षणों का भी साक्षी होता है जहाँ प्रेम की ज़मीन धीरे-धीरे पकती और कठिन, कठिनतर, कठिनतम होते समय में पृथ्वी की तरह धैर्यशाली और अडिग बनती है-

(सात) ''मरूथल के गरम रेत सा प्यार/पहाड़ी झील के ठिठुरते पानी-सा/दूध और पानी से हम/दिया और बाती से हम/बीच खिले नागफनी के फूल/कटे खेत के बाद की तनी तीखी खूँटियाँ/हमने सहा सदियों/जैसे खुद को समझा पृथ्वी'' इस तरह ''कॉलेज की डायरी से'' तरुण हृदयों के कोमल भावों की साकार अभिव्यक्ति है।

संग्रह का दूसरा भाग ''बीच की ढलानों पर कहीं'' प्रेम में आए उत्तर पक्ष का संगीत हैं आरोह की तरह अवरोह भी जीवन संगीत का बड़ा सच है और इसे नकारा नहीं जा सकता। ''प्रेम की जगह अनिश्चित है'' कविता में 'विनोद कुमार शुक्ल' लिखते है ''प्रेम की जगह अनिश्चित है/यहाँ कोई नही होगा की जगह भी कोई है।/.....बहुत अँधेरे में/प्रेम के सुख में/पलक मूँद लेने का अन्धकार है।/अपने हिस्से की आड़ में/अचानक स्पर्श करते/उपस्थित हुए/और स्पर्श करते, हुए विदा।'' तो सच ऐसा ही लगता है कि मिलन और विदाई के बीच का गैप-पलक मूँदने भर से उपजे अंधकार का अन्तराल है जो पलक खुलते शायद मिट जाए लेकिन यह निश्चित नहीं और इंतज़ार में कहीं बचा रह जाता है वह प्रेम। विमलेश ने प्रेम के इस उत्तर पक्ष में भी भावनाओं के कई गीले रंग भरे हैं। सुनो/प्यार भी बदल जाता है किसी मोड़ पर/हमारे सफेद होते बालों के साथ/बच रहता है/दूर कोई मद्धिम तारा चमकता-बुझता/सच रहता है/जीने के लिए ज़रूरी तर्क जैसे/हमारे होने के बीच की ढलानों पर कहीं।''

प्रेम कविताओं में प्रेम का पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष मूलत: द्वन्द्वात्मक स्थितियों का शिकार रहता है न तो कवि और न ही पाठक यह निश्चित कर पाता है कि प्रेम में डूबा या प्रेम की टूटन को झेलता प्रेमी-हृदय वास्तव में प्रेम कर कहाँ रहा होता है? प्रेम करते हुए या टूटते हुए? ''शमशेर'' की एक ग़ज़ल इस बात को पुख़्ता करने के लिए काफी है -

''हमारी बात हमीं से सुनो तो कैसा हो,
मगर ये जाके उन्हीं से कहो तो क्योंकर हो!
ये बेदिली ही न हो संगे-आस्तानए-यार,
वगरना इश्क की मंज़िल ये हो तो क्योंकि हो।''

इसलिए प्रेम की टूटन पर भी बात करना उतना ही कठिन और दुष्कर है जितना ही प्रेम में लीन हृदयों पर बात करना। विमलेश अपनी लम्बी कविता 'उत्तर प्रेम' में कुछ इसी द्वंद्व के शिकार होते दिखते है ''चले ज्यों पतली रस्सी पर नट-नटी/आँगन के फूल-सा खिले/झरे/मिट्टी हुए/मरे ज्यों मरता है/रात में उजाला/ज़िंदा हुए ज्यों दिन में रोशनी/कहा बहुत कुछ/सुना बहुत कुछ/एक दूसरे की पीठ पर/उगे लाल शब्दों के दाग/सहा हमने/अहा हमने/मुट्ठी के रेत सा फिसले हम धीमें/मिटे हम कागज़ पर स्याही-सा/शब्द से घिसे/प्यार किया ज्यों रंग पानी/धूप बादल/आग सावन।'' अजीब है कि प्रेम में टूटन काँच के चटकने या खंण्डित हो टुकड़ों में तब्दील हो जाने जैसा नहीं होता बल्कि वह एक श्लेष्मा की तरह होता है जो दूर जाते हुए भी अपनी चिपकन साथ लेता चलता है। ''लौट आओगे कभी/क्या कहकर पुकारूँ-/कहूँ कि फेफड़े की हवा कम हो रही है/कि ज़िंदा रहने के लिए मुझे तुम्हारी साँसों की बेहद ज़रूरत/कि मैं एक पेड़ हूँ/और तुम जरूरी धूप/एक घोसला है हमारा घर/सूना और तुम्हारे कदमों की आहट के इंतज़ार में चुप''..... दाम्पत्य प्रेम में टूटन के ऐसे बहुत से उदाहरण विमलेश के इस प्रेम संग्रह में जगह-जगह उभरे हैं। ''प्रेम करना अन्तत:'' कविता को पढ़ते हुए कवि से एक शिकायत-सी उभरती है, स्त्री विमर्शकारों के लिए भी यह मुद्दे का विषय हो सकता है कि क्या प्रेम जैसा विषय 'कैटेगेराइज़्ड' किया जा सकता है? मसलन पत्नी के लिए प्रेम में और प्रेमिका के लिए छद्म प्रेम में? यहाँ किस तरह का प्रेमी छद्म कार्य करता है? इसी कविता में आगे की पंक्तियों जो ध्वनित करती हैं ''कविता के प्रेम और सममुच के प्रेम को एक करने की कोशिश में/छिल जाती आत्मा की त्वचा/होते जाते मेरे शब्द लहुलुहान''..... के अनुसार

रचना के भीतर रचनाकार द्वारा सृजित प्रेम और यथार्थ के धरातल पर उभरता प्रेम बहुत कुछ एक जैसा नहीं हो पाता - यह सच विमलेश ने स्वीकार कर वास्तव में एक साहस का कार्य ही किया है।

प्रेम की ज़मीन इतिहास के साथ-साथ वर्तमान से भी प्रभावित रहती ही है ''दरअसल'' कविता में विमलेश प्रेम पर बाज़ारवाद के हावी होने की ओर संकेत करते हुए कहते है ''दरअसल वह एक ऐसा समय था जिसमें बाज़ार की साँस चलती थी/ हम एक ऐसे समय में/यक़ीन की चिड़िया सीने में लिए घर से निकले थे/जब यक़ीन शब्द बेमानी हो चुका था/ यकीनन वह प्यार का नहीं/बाजार का समय था।''

कविता के भीतर कथा कहने का भी चलन रहा है ''बार-बार एक ही गीत बजता है'' कविता में विमलेश इसी प्रकार का प्रयोग करते दिखते हैं। फोन की कॉल बेल से शुरू होती कविता पौधों में पानी डालने, बीमार माँ को दवाइयाँ खिलाने, बाजार से सब्ज़ियाँ खरीदने, रोटी सेकने, बच्चों को खाना खिलाने, जल्दी उठने और दफ्तर की सीढ़ियाँ चढ़ने तक किसी गहरे इंतज़ार में सिमटी एक अधूरी प्रेम कथा की प्रतीति कराती है। इसी प्रकार 'इस बसंत में' जिस सुंदर शब्द का इंतज़ार कवि को है 'वह बहुत लाल शिरीष के फूल सा छतनार'' और ''गुनगुने मौसम-सा शब्द'' छूट गया प्रेम ही है 'जो न बीतता' है न ही पिघलता'' है।

भावनाओं के सैलाब में जब गहरी और भेद्य चोटें मिलती हैं तो यात्री जिस रास्ते मंजिल की तलाश में निकलता है या तो वापस वहीं लौटता या एक शून्य में तब्दील होने लगता है या एक अलग यात्रा की शुरूआत करता है। यह अवस्था बहुत कुछ आध्यात्म की सीढ़ियाँ चढ़ती दिखती हैं। विमलेश की कुछ कविताएँ इसका संकेत देती है यथा ''जिसे तुम कहते हो प्यार/वह वैसा ही है/जैसे तुम कहते हो ईश्वर/अंतत: थरथराता एक शून्य/और कुछ नहीं'' या ....., ''लौटना आख़िर में लौटना नहीं/ एक अलग यात्रा पर/फिर चल पड़ने जैसा था'', ''तुमसे प्रेम करना एक यात्रा/चलना अशेष/पहुँचना नहीं कहीं..।''

इस प्रकार विमलेश की प्रेम कविताओं का यह संग्रह अपने समूचेपन में झीनी-झीनी-सी प्रेम की पीड़ा का संगीत है। उदासियों और इंतज़ारों के बीच कहीं-कहीं मुस्कुराहटों की उजली आभा भी बिखरती है जो प्रेम की ज़मीन ही है चूँकि प्रेम की पगडंडी पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान है तो सुख से ज़्यादा पीड़ा के क्षणों का होना लाजमी है। संग्रह में एक पुरसूकून सी आत्मीयता महसूस की जा सकती है। कहीं-कहीं कविता में भावों का दोहराव लक्षित होता है जिस पर गौर करने की ज़रूरत कवि से की जा सकती है और कई जगह वर्तनियों की अशुद्धि कविता पाठ के प्रवाह में बाधक भी बनती दिखती है जो सम्भवत: प्रूफ रीडिंग की कमियों को उजागर करती है। कुल मिलाकर विमलेश का यह कविता संग्रह पठनीय और प्रशंसनीय है और प्रेम कविताओं के संग्रहों में सराहना के योग्य है।

अन्तत: सैनी अशेष' की इस महत्त्वपूर्ण पंक्तियों के साथ अपनी बात समाप्त करती हूँ ''प्रेम नर-नारी के प्रथम और निर्दोष आकर्षण के अंतर्गत एक मूल मानवीय रिश्ता है।.... प्रेम के बसेरों पर सारे बंधन और सारी स्वतंत्रताएँ अपने अपने विकास मार्ग बनाती है। यहीं से देह और विदेह के मिलन और विरह आकारों से निराकारों की यात्राओं पर निकलते है ओर कलाओं के सारे आयामों के माध्यम से अपनी प्यास को गहरा होते देखते है। स्त्री-पुरुष एक दूसरे की तरफ खिंचते हुए एक सृष्टि के रहस्यों तक जा पहुँचते हैं। एक दूसरे को जानने के सफर में अपने पास नए होकर लौटते हैं। एकत्व से द्वैत और द्वैत से अद्वैत होकर शून्य होने की समझ पाते हैं। इसी सफर में वे पाते हैं कि स्त्री में एक पुरुष और पुरुष में एक स्त्री रहती है और इसकी खोज-ख़बर और सार-सँभाल का नाम ही प्रेम है।''

***

संपर्क: डॉ. शिवानी गुप्ता,
C/O - शीला एरलान्ड,
प्लॉट नं. 42, वैष्णव नगर कॉलोनी,
कंचनपुर,
डी. एल. डब्ल्यु., वारणसी - 221106,
फोन नंबर- 09198241570

## पुस्तकें इन दिनों....

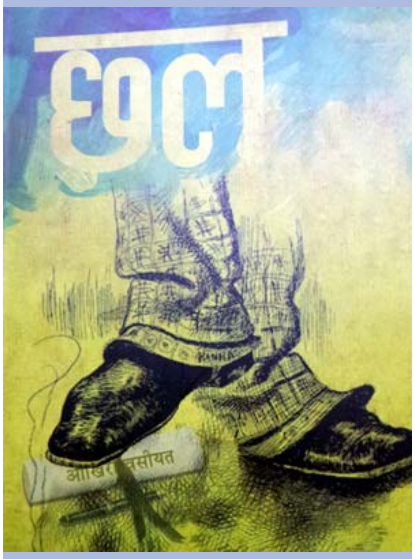


**छल ( उपन्यास )**
**अचला नागर**
**प्रकाशन : लोक भारती प्रकाशन**

सुप्रसिद्ध कथाकार तथा फिल्मों एवं धारावाहिकों की लेखिका अचला नागर का यह पहला उपन्यास है। अपने पिताजी स्व. अमृतलाल नागर की इच्छा को उन्होंने यह उपन्यास लिखकर पूरा किया है, जो यह चाहते थे कि अचला नागर उपन्यास भी लिखें। निकाह से लेकर बागबान जैसी सफल फिल्में लिखने वाली अचला नागर का उपन्यास भी उनकी फिल्मों की पटकथा की ही तरह कसा हुआ है। कई बार ऐसा भी लगता है कि जैसे हम कोई उपन्यास नहीं पढ़ रहे हैं बल्कि कोई फ़िल्म ही देख रहे हैं। छोटी-छोटी घटनाओं को पूरे दृश्यों में बदल दिया गया है। चूँकि अचला नागर लगातार फ़िल्मों के लिये लिखती रही हैं, इसलिए उपन्यास पर भी उसका प्रभाव साफ दिखता है। लेकिन उससे उपन्यास की पठनीयता में कहीं कोई कमी नहीं आती है। इसमें वे सारे तत्त्व हैं जो किसी भी पाठक को बाँध सकते हैं। ड्रामा है, रहस्य है, इमोशनल दृश्य हैं, और उपन्यास के नाम के अनुसार छल तो है ही। गुजराती परिवार को पृष्ठभूमि बनाकर बहुत ही दिलचस्प अंदाज़ में अचला नागर ने कथा का ताना-बाना बुना है। पठनीय उपन्यास।

❑❑❑

# सत्ता के दुरुपयोग से पनपा विमर्श

### ( वह कोई और थी के विशेष संदर्भ में )

शकील अहमद

सुधा ओम ढींगरा के दस प्रतिनिधि कहानियों में संकलित 'वह कोई और थी' कहानी में अमेरिका के परिवेश का चित्र-चित्रण किया गया है। इसमें उन्होंने पुरुष के साथ होने वाले स्त्री के बर्ताव को दिखाने की कोशिश की है। इस कहानी में लेखिका ने एक ऐसे विमर्श पर कलम उठाई है; जिसे पुरुष विमर्श कहा जा सकता है।

लेखिका ने इस कहानी में स्त्री और पुरुष के बीच के संबंधों को स्पष्ट किया है। पति और पत्नी का रिश्ता बहुत ही मज़बूत होता है। 'वह कोई और थी' में कहानी का नायक अभिनन्दन वत्स इस बात को अच्छी तरह से जानता है पर दूसरी ओर सपना है जो इस बात को समझने की कोशिश भी नहीं करती। उसके लिए संबंधों का कोई मूल्य नहीं है। उसके लिए तो रिश्ते सिर्फ़ टिशु पेपर की तरह हैं जिसे पोंछा और फेंक दिया। अभिनन्दन वत्स हर रिश्ते को अच्छी तरह से निभाना चाहता है। संबंधों में मिठास रखने के लिए वह सपना के द्वारा उसे उल्टा-सीधा बोलने पर भी वह चुप रहता है, 'सपना के शाब्दिक तूफ़ान का वह चुप्पी की घास बन मुकाबला करता है, अक्सर खामोश रहता है और बेकसूर होते हुए भी झुक जाता है... चुप्पी को उसने अपनी ढाल बना लिया है।'1

अभिनन्दन वत्स पर परिवार का बोझ है, माँ-बहिन उस पर निर्भर हैं। सपना इस बात को अच्छी तरह जानती है। वह इस बात से भी अच्छी तरह परिचित है कि वह उसे छोड़कर कहीं और जा भी नहीं सकता। बस सपना अभिनन्दन की इन्हीं मजबूरियों का फायदा उठाना ही अपना एक मात्र उद्देश्य बना लेती है। एक ग्रीन कार्ड की धमकी को ध्यान में रखते हुए, दूसरी ओर अपनी गृहस्थी सँभालने और एक दिन सब ठीक हो जाएगा, सोच रखने वाला अभिनन्दन निभाता रहा।

वह सपना के व्यवहार से प्रभावित हुआ था, तभी उसने शादी की थी। वह इस बात से अनभिज्ञ था कि शादी के बाद सपना अपने असली चेहरा दिखाएगी और उसे बिना पैसे का नौकर बना दिया जाएगा और रात में पत्नी की इच्छानुसार संबंध बनाने पर उसको मजबूर किया जाएगा। अभिनन्दन जैसे पुरुष के लिए ग्रीन कार्ड कुछ भी महत्त्व नहीं रखता है। लेकिन वह संबंधों को तोड़ना नहीं चाहता है। इस संबंधों के कारण ही वह सब कुछ सहता रहा। जब यह सब उससे नहीं सहा गया तो उसने अंत में अपना निर्णय ले लिया। वह कहता है, 'यह धौंस किसी और को देना। अपना ग्रीन कार्ड भी किसी और लड़के लिए सुरक्षित रखना। मुझे तुम से कुछ नहीं चाहिए... मैंने तुमसे इसलिए शादी नहीं की थी। हाँ, जिस लड़की को मैंने पसंद किया था वह कोई और थी... तुम नहीं।'2

अगर इस कहानी को पुरुष विमर्श की कहानी कहा जाए तो अनुचित नहीं होगा। क्योंकि जिस समस्या से पीड़ित स्त्री हो सकती है उसी समस्या से पीड़ित पुरुष भी तो हो सकता है और उसी समस्या को आज सुधा ओम ढींगरा ने पुरुष वर्ग के संबंध में उठाया है। जहाँ सत्ता बदलती है, शोषण का रूप और आश्रय भी बदलता है। स्त्री की रक्षा के लिए संविधान द्वारा तो कानून बना दिये गए हैं। लेकिन स्त्री द्वारा अगर पुरुष को सताया जाए तो उसके लिए कोई कानून नहीं है। लेखिका कहती है, 'लड़कों का जो शोषण होता है उसके लिए यहाँ कोई कानून नहीं।'3 लड़कियों के हित में कानून बन गए हैं और इसी कानून का सहारा लेकर स्त्री द्वारा पुरुष का शोषण किया जा रहा है। सपना जैसी लड़कियों के संबंध में लेखिका लिखती हैं, 'ऐसी लड़कियों से तंग आकर कई लड़के हरे रंग का कार्ड मिलने के फौरन बाद तलाक दे देते हैं और उसे रोकने के लिए नए-नए सख़्त कानून लड़कियों के हक में बना दिए गए हैं। वे तलाक क्यों देते... इसके कारणों को कोई नहीं जानना चाहता।'4

सुधा ओम ढींगरा ने पुरुष विमर्श का जो दमनकारी चित्र इस कहानी में उकेरा है वह वास्तव में यथार्थ के धरातल पर सटीक बैठता है। वैसे तो अमेरिका जैसे देश में बहुत से प्रवासी लोग रह रहे हैं। उनमें से कुछ तो ऐसे हैं जो अपनी संस्कृति को बचाए रखना चाहते हैं और कुछ ऐसे हैं जो इस संस्कृति में विश्वास नहीं करते। वे भारत से ही पश्चिमी सभ्यता के पुजारी होते हैं। सपना के माँ-बाप दोनों भारत से हैं। माँ हर संभव दशा में अपनी संस्कृति को बचाए रखना चाहती है। लेकिन, अमेरिका की खुली संस्कृति का प्रभाव और सपना के पिता की सोच का प्रभाव, जो स्वयं अमेरिकन बन चुका है, सपना की मति भ्रष्ट हो चुकी है। सही, ग़लत के साथ-साथ मानवीयता भी मिट चुकी है उसमें। उसकी दृष्टि में वत्स पति नहीं केवल एक नौकर है तथा रात को सेक्स करने का एक माध्यम। सपना स्पष्ट शब्दों में अपने पापा से कहती है, 'पापा आप हमेशा से एक नौकर चाहते थे, जो आपके इशारों पर नाच सके। भारत के नौकरों को मिस कर रहे थे। ले आई हूँ आपके लिए एक पढ़ा-लिखा, सीधा-सादा नौकर... मिलिए अभिनन्दन वत्स उर्फ नंदू से।'5

स्त्री विमर्श की चर्चा बहुत पहले से होती आ रही है। और इस विमर्श का एक ही उद्देश्य था स्त्रियों की दशा में सुधार लाना। अबलाओं को सबलाओं का रूप प्रदान करना। समाज में एक स्थान

दिलाना, पुरुषों द्वारा सताए जाने पर कानून द्वारा उनकी सहायता करना लेकिन, इसी कानून के सहारे से कई स्त्रियों ने तो पुरुषों को अपने हाथ की कठपुतली बना लिया। कानून केवल स्त्रियों की सहायता के लिए था। लेकिन इसी कानून का कइयों ने नाजायज़ फायदा उठाया। कानून की आड़ में अपनी भोगवादी प्रवृत्ति का खुल्लम-खुल्ला प्रयोग किया। पुरुष पर अत्याचार किये। कानून ने भी पुरुष जाति का साथ नहीं दिया। भारत से गई मैरी ऐलन इस बात को अच्छी तरह जानती थी कि यहाँ पर स्त्रियाँ भारत से आए हुए पुरुषों पर अत्याचार करती हैं; इसीलिए वह वत्स के साथ सहानुभूति दिखाती हुई कहती है, 'बेटा मैं जानती हूँ कि यह लोग तुम्हें भारत से लाए हैं और अभी तुम्हारे पास काम करने के लिए वर्क परमिट नहीं है। आदमी सुबह उठकर जब अकेले में रोता है, इसका मतलब होता है कि औरत ने पिछली रात बिस्तर पर उसे बेबस किया है।'6

कहानी की नायिका सपना ने वत्स का शारीरिक शोषण ही नहीं किया बल्कि मानसिक शोषण भी किया है। उसके रिश्तों के निभाने पर प्रश्न चिह्न लगाकर उसका भावनात्मक स्तर पर शोषण किया है। वह स्पष्ट शब्दों में कहती है, 'डैड हिन्दुस्तान के लोग भावनात्मक बेवकूफ होते हैं। दिमाग से काम लेना जानते ही नहीं। दिल हथेली पर लिए घूमते रहते हैं। पाँव छूकर, मीठा बोलकर बड़ों को आदर देकर कुछ भी करवा लो इनसे। हर समय संस्कारों की दुहाई देते हैं... क्या है संस्कार?'7

किसी तरह से अभिनन्दन हिम्मत जुटा कर सपना के शोषण का विरोध करता है तो सपना कहती है, 'अच्छा तो अब पक्षी के पंख निकल आए हैं... देखती हूँ दो साल के ग्रीन कार्ड पर कितना उड़ते हो। दस साल के कार्ड के लिए यहीं आओगे इसी पिंजरे में अन्यथा भारत लौट जाओगे।'8

पितृसत्ता या मातृसत्ता, सत्ता का दूसरा अर्थ ही उसका दुरुपयोग है। इस कहानी से लेखिका ने यही कहने की कोशिश की है कि आज स्त्री स्वतंत्रता की आड़ में वही सब पुरुष के साथ कर रही है, जो सदियों से पुरुष उसके साथ करता आया है। लेखिका के अनुसार प्रत्येक अत्याचार को सहने की एक सीमा होती है और जब यह सीमा समाप्त हो जाती है तो उस सीमा को तोड़ भी दिया जाता है और अंत में अभिनन्दन ने वही किया। लेखिका ने इस कहानी के माध्यम से स्त्री के जिस विभीषक स्वरूप को उजागर किया है, वह इस लिहाज़ से ज़्यादा उल्लेखनीय है कि लिखने वाली महिला हैं। वे निष्पक्ष भाव से अपनी बात को प्रकट करती हैं। 'क्षितिज से परे' में पुरुष के अत्याचार का वर्णन है और इस कहानी में पुरुष के साथ स्त्री किस प्रकार का व्यवहार कर रही है, इसको अपने दृष्टिकोण से समाज के समक्ष पेश किया है। लेखिका ने इस प्रकार की स्त्री को कहीं न कहीं देखा ज़रूर होगा। यह सत्य है कि स्त्री शोषण का शिकार हो रही है लेकिन कहीं-कहीं पुरुष पर भी अत्याचार हो रहे हैं।

सुधा ओम ढींगरा ने स्त्री का या पुरुष जाति का पक्ष नहीं लिया है बल्कि यह दिखाया है कि अगर स्त्री पुरुषों के द्वारा सताई जा रही हैं तो पुरुष भी स्त्री के शोषण का शिकार हो रहे हैं। कभी शारीरिक रूप से तो कभी मानसिक रूप से।

❐❐❐

संदर्भ : दस प्रतिनिधि कहानियाँ, सुधा ओम ढींगरा, शिवना प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2015, 1-पृ. सं. 113, 2-वही, पृ. सं. 124, 3-वही, पृ. सं. 116, 4-वही, पृ. सं. 116, 5-वही, पृ. सं. 121, 6-वही, पृ. सं. 116, 7-वही, पृ. सं. 121, 8- वही, पृ. सं. 118

संपर्क : शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (भारत) फोन : 07078072889

shakeelahamad409@gmail.com

## पुस्तकें इन दिनों....

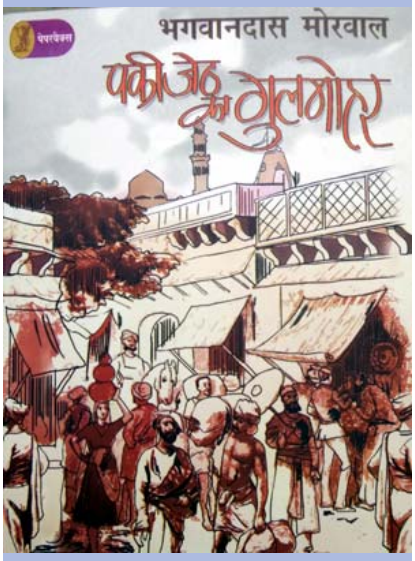


**पकी जेठ का गुलमोहर ( संस्मरण )**
**भगवान दास मोरवाल**
**प्रकाशन : वाणी प्रकाशन**

भगवान दास मोरवाल अपने उपन्यासों के विषयों को लेकर चर्चित रहे हैं। उनके उपन्यास चाहे वो काला पहाड़ हो, रेत हो, नरक मसीहा हो या हलाला हो, ये सब अपने अलग विषय तथा शिल्प के कारण चर्चित भी रहे और प्रशंसित भी। पकी जेठ का गुलमोहर भगवान दास मोरवाल का संस्मरण संग्रह है। इस संग्रह को भी उन्होंने उपन्यास की ही शैली में लिखा है। अत्यंत रोचक अंदाज़ में अपनी ही कहानी को किसी कुशल क़िस्सागो की शैली में सुनाते हुए उन्होंने बचपन से लेकर अपने कथाकार बन जाने तक की कहानी को सुनाया है। घटनाओं का इतनी बारीकी से और इतने सुंदर शब्द चित्र बनाते हुए वर्णन है कि पाठक एक बार इस संस्मरणात्मक पुस्तक को प्रारंभ करता है तो फिर अंत तक पढ़ता ही चला जाता है। स्कूल तथा कॉलेज के संस्मरण पाठक को अपने ही जीवन में घटित हुए लगते हैं। शादी का प्रसंग भी बहुत ही दिलचस्पी के साथ लेखक ने शब्दों में बाँधा है। इसे पढ़ते हुए पाठक को पता चलता है कि क्यों भगवान दास मोरवाल को इतना महत्त्वपूर्ण उपन्यास माना जाता है। अत्यंत दिलचस्प तथा पठनीय पुस्तक।

❐❐❐

# गद्य का नया संस्कार

डॉ. सुशील त्रिवेदी

पुस्तक: जलतरंग (उपन्यास); लेखक: संतोष चौबे
प्रकाशक: भारतीय ज्ञानपीठ

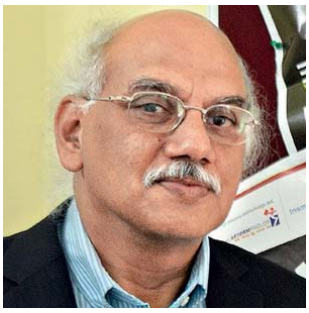

साहित्य अथवा अन्य कोई भी सृजनकार्य अपने समय की अन्य सृजनात्मक सक्रियता से निरपेक्ष नहीं रह सकता। वास्तव में साहित्य और कला अन्य अनुशासनों से उत्प्रेरणा ग्रहण करती है और अपने आप को ज्यादा समृद्ध करती है। विभिन्न अनुशासनों के बीच एक अन्तरसंवाद होता रहता है जो रूप और कथ्य दोनों ही स्तरों पर उद्घाटित होता है। यह कहना सही होगा कि समस्त अनुशासनों का सह अस्तित्व एक सत्य है और यह कभी समाप्त न होने वाली एक प्रक्रिया है। यही वजह है कि साहित्य और कला के क्षेत्र में अन्तर अनुशासन की दृष्टि एक सतत गत्यात्मक दृष्टि है। यह दृष्टि किसी भी सर्जक की रचना-प्रक्रिया का एक अंग होती है। इस दृष्टि के जरिये रचनाकार अपनी कल्पना को रूप देता है और उस शैली को अपनाता है। इस शैली से उसकी रचना अस्तित्व में आती है। साहित्य का अपना एक व्यक्तित्व है और इस व्यक्तित्त्व में विभिन्न अनुशासनों के सिद्धांत और विचार अपने आप ही आ जाते है, लगभग उसी तरह जैसे किसी व्यक्ति को सांस्कृतिक उत्तराधिकार प्राप्त होता है। भाव संवेदना और ज्ञान संवेदना दोनों ही स्तरों पर हम यह प्रक्रिया देख सकते हैं। चूँकि सभी कलाओं और सभी में सौन्दर्य बोध एक प्रमुख तत्त्व है, वह कलाओं को परखने के लिए एक समान आधार उपलब्ध कराता है।

प्रख्यात चिन्तक क्रिस्टोफर काडवेल ने विभिन्न कलाओं के आपसी संबंधों को लेकर कहा था कि संगीत, कविता और कहानी में ध्वनि के जरिए बाह्य यथार्थ प्रकट होता है; जबकि चित्रकला, शिल्प, नृत्य, रंगकर्म और वास्तुशिल्प में चाक्षुष प्रतीकों के द्वारा बाह्य यथार्थ प्रकट होता है। इस तरह वे संगीत और साहित्य को एक खण्ड में और अन्य कलाओं को दूसरे खण्ड में लेकर एकता के सूत्र में बाँधते हैं। काडवेल का आगे यह कहना महत्त्वपूर्ण है कि प्लास्टिक कलाएँ कविता के समान हैं। जिस तरह कविता को पढ़ते हुए रसिक कवि की दृष्टि को अपना लेता है, उसी तरह पेंटिंग को देखते हुए हम चित्रकार के दृष्टिकोण को अपना लेते हैं और पाठक तथा दर्शक संसार को उसी जगह से देखते हैं जहाँ से कवि और चित्रकार ने देखा था। इस तरह पहले तो काडवेल कविता और चाक्षुष कलाओं में अन्तर करते हैं लेकिन फिर प्रभाव की दृष्टि से दोनों को समन्वित कर देते हैं। इसी सिलसिले में उनका लय और सामंजस्य का सिद्धांत भी महत्त्वपूर्ण है। कविता और संगीत में वे लय को देखते हैं जबकि चाक्षुष कलाओं में वे सांमजस्य को प्रमुखता देते हैं। किन्तु लय और सामंजस्य के प्रभाव का जब हम अध्ययन करते हैं तब पाते हैं कि वे हमें एक बेहतर व्यक्ति बनने को प्रेरित करते हैं। इसलिए, दोनों ही चीज़ें एक साथ हमारे लिए महत्त्वपूर्ण हैं। सारी कलाएँ अपने लक्ष्य की दृष्टि से एक समान हैं; उनकी भावना एक है। संगीत स्वर और शब्द का संगम है। शब्द स्वर और भाव का आरोहण है। नृत्य की मुद्राओं और भंगिमाओं में स्वर और राग उभरते हैं। चित्रों में रंग और रेखाएँ वास्तव में एक लय की सृष्टि करती हैं।

यह तो हुई सिद्धांत की बात कि कलाएँ अन्तर निर्भर होती है, किन्तु हम व्यवहार में यही देखते हैं कि संगीत, शिल्पकला, चित्रकला, मूर्तिकला और साहित्य के सृजनकर्ताओं के बीच समन्वय या आपसी संपर्क कम ही होता है। इन सृजनकर्ताओं के द्वारा कलाओं के शास्त्रीय स्वरूप की विकास प्रक्रिया से परिचित होने की कोशिश कुछ कम ही की जाती है। संगीतकार अपनी संगीत साधना में, चित्रकार चित्रांकन में, शिल्पकार मूर्ति गढ़ने और साहित्यकार गद्य, पद्य में रचना प्रस्तुत करने में संलग्न रहते हैं। इनमें आपसी रवादारी का स्पेस भी संकीर्ण होता है।

ऐसे समय में संतोष चौबे अपने उपन्यास ''जलतरंग'' के द्वारा कलाओं की अन्तर निर्भरता को केवल उजागर नहीं करते बल्कि उसे अपनी रचनात्मकता से साकार करते हैं। उपन्यास में एक युगल दंपत्ति के पारस्परिक विकसित होते प्रेम संबंधों की लड़ी के रूप में संगीत की साधना का मर्म उभरता है। यह युगल दंपति संगीत की साधना केवल स्वरों तक सीमित नहीं रखता है बल्कि उस साधना के ऐतिहासिक और शास्त्रीय आधार को अपनी विशिष्टता बनाता है। यह युगल शास्त्रीय संगीत का स्वराभ्यास करते हुए स्वरों की उत्पत्ति और उनके विस्तार को समझने-बूझने की गंभीर चेष्टा करता है। भारतीय संगीत की ऐतिहासिक यात्रा का ज्ञान अर्जित करने और संगीत का शास्त्रीय अनुसंधान करने के लिए यह युगल अपने जीवन के सबसे रचनात्मक वर्षों को समर्पित कर देता है। इस ज्ञान और अनुसंधान की प्रक्रिया में यह युगल इतन डूबा रहता है कि संगीत उनका जीवन बन जाता है और वह अपने समय के सामाजिक, राजनीतिक परिवर्तनों, तथाकथित भौतिक विकास की संरचना से अपरिचित हो जाता है और यहीं आकर इस युगल का उस सच से

साक्षात्कार होता है जिसमें शास्त्रीय संगीत शोर में बदल जाता है, पर्यावरण की हरियाली कान्क्रीट के जंगल में परिवर्तित हो जाती है। इतना ही नहीं, आपसी संबंधों का सद्भाव समारोहिक सोद्देश्यमूलक लेन-देन में बदल जाता है। ऐसे समय के साथ यह युगल अपना तालमेल नहीं बैठा पाता क्योंकि सुर, ताल और लय का स्थान अब नारों, चिल्लाहट और गुर्राहट ने ले लिया है।

''जलतरंग'' उपन्यास कई मायनों में समकालीन हिन्दी औपन्यासिक रचनात्मकता की अलग बानगी प्रस्तुत करता है। पहला बिन्दु तो यही कि इस उपन्यास का उद्देश्य भारतीय शास्त्रीय संगीत के उद्भव और विकास की कालानुक्रमिक यात्रा प्रस्तुत करता है। इस संदर्भ में यह कहना ज़रूरी है कि संतोश चौबे ने भारतीय शास्त्रीय संगीत को उसकी सर्वांगता में वर्णित और विश्लेषित भी किया है। इस लिहाज से यह ऐसा पहला उपन्यास है जिसकी विशय वस्तु शास्त्रीय संगीत और कुछ हद तक चित्रकला की ऐतिहासिकता और अकादमिकता है।

इस उपन्यास में परिशिष्ट के रूप में राग-रागिनियों के इतिहास का कालानुक्रमिक संक्षिप्त विवरण दिया गया है। इसके साथ ही उन ग्रंथों की सूची भी दी गई है जिनके आधार पर इस इतिहास को उपन्यास का विषय बनाया गया है। सीधी सी बात यह है कि पूरी प्रामाणिकता और आधिकारिता के साथ यह संकेतित किया गया है कि उपन्यास में अनुस्यूत संगीत इतिहास कल्पना की उड़ान नहीं है। कल्पना की उड़ान हैरू उपन्यास के केन्द्रीय पात्रों की प्रेम कथा में।

अगली बात यह है कि हमारे समय के सबसे बड़े संकट पर्यावरण के बहुआयामी प्रदूषण को भी वैज्ञानिक आधार पर किन्तु उपन्यास की विषय वस्तु के अनुशंग के रूप में पूरी कल्पनाशीलता से उभारा गया है।

''जलतरंग'' उपन्यास की संरचना जिस प्रकार की गई है वह हिन्दी साहित्य के उपन्यासों की सामान्य लीक से अलग है। लीक से अलग होने के कारण, इस उपन्यास को लेकर कुछ सवाल भी उठते हैं, जिनका

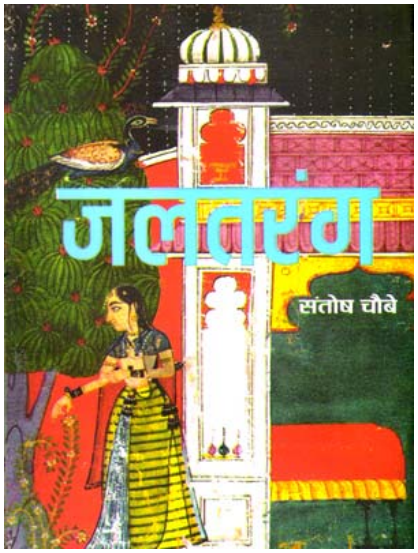


उत्तर पाना ज़रूरी है। इसमें कोई शक नहीं कि संतोष चौबे हमारे समय के ऐसे चिंतक हैं जो मूलतः वैज्ञानिक जीवन दृश्टि से संपन्न हैं और अपनी संवेदनशीलता को बरकरार रखते हुए सामाजिक सरोकारों से जूझते हैं। उनकी यह संवेदनशीलता उनकी सांस्कृतिक चेतना के रूप में उभरकर आती है और इसी माध्यम से उनकी साहित्यिक रचनाधर्मिता प्रकट होती है।

एक सार्थक लेखक होने के कारण उन्हें अनिवार्यतः जिस अन्तर्द्वंद्व से गुज़रना पड़ता है वह है अपने परिवेश के प्रति असंतोश से उपजी सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा और साहित्य या कला की प्रकृति की सीमाओं का अहसास। इसी कारण लेखक की संवेदना उसकी रचनात्मकता को दूसरी दिशा की ओर ले जाती है और ऐसे में उसका आंतरिक द्वंद्व और छटपटाहट और भी उभकर अभिव्यक्त होती है। इस उपन्यास में संतोष चौबे ने संगीत के बहुआयामी विकास को यदि अभिधात्मक और अनुसंधानात्मक शैली में प्रस्तुत किया है तो प्रेम में रचे-पचे घटनाक्रम को काव्यात्मक रसात्मकता के साथ अभिव्यक्त किया है। एक ही कृति में अधिकांशतः अकादमिक सपाट बयानी और फिर काव्यात्मक गद्य की अभिव्यक्ति के बीच तालमेल स्थापित करने के लिए - उपन्यास की बहुआयामी संरचना के लिए - एक अलग शैली विकसित करना जरूरी हो जाता है। संतोष चौबे ने यही किया है। वे अधिकांशतः निःसंग होकर, संगीत के सुरों के विस्तार को कभी अंकगणितीय और कभी ज्यामितीय शैली में और कभी बीजीय रूप में विश्लेषित करते हैं। उनका यह विश्लेषण एक वैज्ञानिक शोध पत्र सह ललित निबंध के रूप में सामने आता है। उनकी निःसंगता और उनकी इस शैली को आगे ले जाना सामान्य उपक्रम नहीं होगा, क्योंकि इसके लिए सूचना और ज्ञान के समन्वय के साथ रचना धर्म निभाना बेहद कठिन है। यह शैली रचनाकार से अतिरिक्त शिल्पगत संरचना विशेशज्ञता की भी माँग करती है।

''जलतरंग'' में यह संघर्ष निरन्तर बना रहा है कि विशय वस्तु को अधिक महत्त्व दिया जाए या कि रूप विधान को। यह बात सामने आती है कि रचनाकार शिल्प के स्थान पर विषय वस्तु पर अधिक ज़ोर दे रहा है। लेकिन इसे भी लेकर रचनात्मक अन्तर्द्वंद्व चलता रहता है। जब विषय वस्तु पर जोर होता है तब रचनाकार का चिंतक रूप उभरता है या यों कहे कि चिंतन की एक आधुनिक गद्यात्मक शैली का विकास होता दिखाई देता है। इसी नई चिंतन शैली की अभिव्यक्ति की ज़रूरत से हिन्दी गद्य में नई शैली का रूपायन संभव हुआ है। चिंतन और अनुभूति जब एक बिन्दु पर आ जाते हैं तब गद्य को नया संस्कार मिलता है। इसमें वैचारिकता और अनुभूति एक साथ अभिव्यक्त होती है।

''जलतरंग'' को पढ़ना मेरे लिए कोई चार दशकों पहले की यादों के सिलसिले से गुजरना भी है। यादों का सिलसिला ऐसा है, जिसमें शास्त्रीय संगीत, चित्रकला, शिल्पकला और साहित्य एक-दूसरे के पड़ोस में अन्तर्क्रिया करती थीं और यह अन्तर्क्रिया समय-समय पर मंच पर या केनवास पर साकार भी होती थी। ''जलतरंग'' मेरे लिए अपनी डायरी के पन्नों को पलटने जैसा अनुभव देता है। अनुभव की यह साझेदारी शायद कुछ और पाठक भी ज़रूर महसूस करेंगे।

❐❐❐

क्यू-3, श्रीराम नगर, फेज-2,
शंकर नगर, रायपुर (छ.ग) 492007
मो. नं.: 98261-44434

समीक्षा

# अभिव्यक्ति में नई अर्थवत्ता का आविष्कार

माधुरी छेड़ा

पुस्तक: गीली मिट्टी के रूपाकार (कविता संग्रह), लेखक: रीता राम दास
प्रकाशक: हिन्द युग्म

रीता दास राम की कविताओं का मुख्य स्वर स्त्री- जीवन की विभिन्न स्थितियों और मन:स्थितियों, उसकी विवशता और वेदना, उसके अछूते स्वप्न, और संघर्ष, रोष और रुदन, पीड़ा और परजीविता, उसके व्यक्तित्त्व और अस्तित्त्व को वाचा देते हुए उसकी मुक्ति की कामना में अपना आशय स्थापित करता है, तो यह एक स्वाभाविक रुझान इसीलिए भी है कि इनमें चित्रित स्त्रियों के अनुभव जगत की प्रतीति स्त्री होने के नाते कहीं न कहीं उनमें भी प्रतिध्वनित हुई है, यानी स्त्री होने के नाते सह-अनुभूति को वाणी देना उनकी प्रतिबद्धता के दायरे में आता है। पर स्त्री होने के साथ-साथ एक रचनाकार होने के नाते समाज की अन्य इकाइयों के प्रति अपने सरोकारों को उन्होंने बखूबी अभिव्यक्त किया है। यही कारण है कि इन कविताओं में समकालीन जीवन के संकटों से गुज़रते, अपने लिए सुकून की एक ज़िंदगी ढूँढ़ते, अपने हिस्से का आकाश और अपने हिस्से की ज़मीन को खोजते लोगों को भी स्पेस मिला है। अर्थात इन कविताओं में स्त्री-विमर्श ने अच्छी खासी जगह घेर रखी है, फिर भी कवयित्री की नज़र हर उस बिंदु पर ठहरती है जहाँ मध्यवर्गीय समाज का आम आदमी, मज़दूर, भिखारी, श्रमिक-औरत संघर्षरत हैं, जद्दोजहद से गुज़र रहे हैं, और प्रतीक्षारत हैं, नए सूर्य के उदित होने की ! कुल मिलाकर कवयित्री अपने 'समय ' को उसकी पूर्णता में शब्दबद्ध करने का संकल्प लिए है।

इन कविताओं में नारी-विश्व की विषम स्थितियों को प्रस्तुत कर कवयित्री पुरुषसत्तात्मक नियंत्रण के प्रति अपना प्रतिरोध दर्ज करती है, क्योंकि ये वो व्यवस्था है जहाँ इक्कीसवीं सदी में भी उसे अपनी पहचान नहीं मिली है, आज भी वह अपनी पहचान ढूँढ रही है - 'आप मुझे / नारी कह सकते हैं / वेश्या कह सकते हैं / देवी कह सकते हैं / डायन / कह सकते हैं / औरत हूँ न / ये सारी व्याख्याएँ मेरी ही हैं।'

यहाँ वेश्या, देवी और डायन नाम केवल स्त्री से जुड़े हुए हैं, इन नामों के पुल्लिंग रूप उपलब्ध नहीं हैं, जो हैं वे स्वतंत्र श्रेणी में आते हैं, सामान्य पुरुषों के लिए इनका प्रयोग नहीं किया जाता। जब कि इन तीनों स्त्री-वाचक शब्दों का व्यापक प्रयोग रोज़मर्रा की ज़िंदगी में दिखाई देता है। तो अभी तक स्त्री इस समाज में अपनी पहचान ढूँढ़ रही है। पुरुष अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए उसे कभी देवी बनाता है, कभी वेश्या, कभी शक्ति का प्रतीक दुर्गा। पर अब वह जागरूक हो रही है,

'न भरमाइए / कहकर कि / कमज़ोर नहीं शक्ति है वह / भरमाइए नहीं / दिलाकर एहसास / कि मूर्ति सुंदरता की है वह / '

यहाँ मानो कवयित्री प्रश्न करती है कि कब तक समाज उसे भ्रमित करता रहेगा ! एक और उसका भरपूर शोषण कर उसे निचोड़ कर रख देना और दूसरी ओर उसे दुर्गा का विशेषण देते हुए शक्ति का प्रतीक बताना ! इन विरोधाभासी स्थितियों के बीच स्त्री पिस रही है। और आगे कवयित्री अपना रोष व्यक्त करती हुई कहती है,

'विकसित होने दें / परजीवी ना बनाएँ, / तजकर छत्रछाया में / पनपने देने का सम्मोह / जीने दें नारी को / मत बनाइए उसे नारी /

अंतिम पंक्ति दूर तक अपना प्रभाव छोड़ती है और इस बात का संकेत देती है कि कैसे लिंग आधारित समाज में औरत की कंडिशनिंग की जाती है। औरत बनने के लिए उसे ट्रेंड किया जाता है। पहले उसे 'औरत' बनाने की प्रक्रिया शुरू होती है, उसके लिए रास्ते और पगडंडीयाँ पहले से तय कर दी जाती हैं, औरत को उसी तयशुदा रास्तों पर चलना है जो समाज ने उसके किए बना रखे हैं -

'पगडंडीयाँ हैं बनी समाज में /चल रही है पगडंडी पर औरतें / बनाकर एक कतार / चल रही है साथ दुनिया / पगडंडी दिखाती है रास्ता /'

यह कविता शुरू होती है स्त्री के लिए पुरुषों द्वारा तय किए हुए रास्तों से, जिस पर वह अब तक चलती रही है। पर फिर कविता एक नया मोड़ लेती है -

और कवयित्री नारी की भीतरी यात्रा का संकेत देती है। अब एक जर्नी औरत के भीतर भी शुरू हो गई है। सोच की यात्रा, चीज़ों, व्यक्तियों और स्थितियों को समझने की यात्रा, जागरूक होने की यात्रा - ' नहीं निकलती / आवाज़ मेरी / घर में ही दबा दी जाती है / तो कैसे सुनाई देगी .....? / मेरी आवाज़ बाहर आप सभी को / मेरा अनुरोध / मेरा विरोध / कि मुझे आना है / बाहर समा जाना है पूरी दुनिया में / तभी मिलेगी मुझे / रिहाई / और नारी को भी'

संघर्ष की यात्रा करती हुई नारी यहाँ तक तो आ पहुँची है जहाँ वह विरोध और प्रतिरोध कर रही है, अपनी मुक्ति के लिए चिंतित और प्रयत्नशील है, उसे अब तक ''घर ही तुम्हारी दुनिया है'' समझाया गया था, पर अब वह समझने लगी है कि दुनिया तो वह है जो घर से बाहर है। घर तो एक क़ैद है और उस जेल की वह

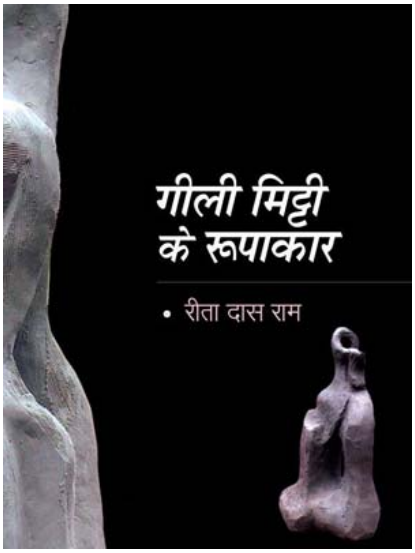

अकेली क़ैदी है और उस जेल में अपने अकेलेपन को वह यूँ व्यक्त करती है – 'एक आसमाँ मेरा भी / दुनिया में / तेरी छत से / बहुत छोटा नज़र आता है / नहीं उड़ते परिंदे यहाँ / तपती धूप में / गश्त लगाता सन्नाटा है /'

पर अब स्त्री अपने प्रति जागरूक होती नज़र आती है। वह अब स्वतंत्रचेता व्यक्ति बनने की ओर अग्रसर है। औरत होने की कंडीशनिंग को अतिक्रमित कर वह बाहर निकल रही है। कवयित्री को लगता है जहाँ से स्त्री की जागरूकता शुरू होती है वहीं से पुरुष का डर भी शुरू होता है। क्योंकि स्त्री के जागरूक होते ही पुरुष का कम्फर्ट ज़ोन ध्वस्त होना शुरू होता है –'डरना चाहिए / हाँ डरना चाहिए हमें / उस वक़्त से कि जिसमें / औरत ढूँढ लेगी/ अपना सुख / एक जलती हुई / कढ़ाई में/ जली हुई सब्जी में/'

इस कविता का प्रारंभ अनेक सम्भावनाओं से भरा हुआ है। औरत जिस दिन सब्जी के जल जाने की परवाह छोड़ देगी, उस दिन वह उस ब्लेकमेलिंग से मुक्त हो जाएगी जहाँ उसकी तारीफ़ कर-करके उसे गृहस्थन बनाए रखने की कोशिश की जाती रही है। वह हमेशा स्वादिष्ट खाना बनाने, घर को तरतीब से रखने, हर सदस्य की सुविधा का ख़्याल रखने में ही उलझी रहकर अपनी ही उपेक्षा किए जाती है। सब्ज़ी और कढ़ाई उसी भावनात्मक शोषण का प्रतीक है। पर आगे न जाने क्यों इतनी सशक्त पकड़ कवयित्री से छूट गई है और वह फिर उसी सम पर लौट आती है –

'कोयले की राख-सा / करके अपने सभी जज़्बात / कहलाने के लिए / ज़िंदा / बार-बार / हाँ बार-बार / बलात्कार / किए जाने के बाद / होते हुए बाँझ /।'

मानसिक सशक्तिकरण की प्रक्रिया मानो पूर्णता तक पहुँचते-पहुँचते अधबीच छूट गई है। पर कवयित्री के मानसिक प्रक्रिया की थाह किसी एक कविता से नहीं लगाई जाती। क्योंकि अन्यत्र एक कविता में मानो एक दृढ़ निश्चय के साथ कहती है –

'औरत को ही लड़नी होगी / अपनी लड़ाई अपने तरीक़े से /' और फिर कवयित्री एक तीखा प्रश्न करती है, 'क्या कोई कृष्ण आया था ? / आया होगा ? द्रौपदी की लाज बचने /'

और यहाँ कवयित्री ''औरत की अक्ल घुटनों में'' की परंपरा से चली आती मान्यता को खारिज करती हुई कहती है

'बच पाई होगी खुद ही किसी न किसी / जद्दोजहदी चाल से / खँगाला होगा युक्ति कोष / समेटी होंगी संदिग्ध क्रियाएँ /'

और स्त्री के भीतर सम्भावनाओं का संकेत देती हुई कहती है – 'बचना आसान नहीं होता टेढ़ी चालों के विरुद्ध/ परन्तु असंभव कुछ होता नहीं'

यानी आज स्त्री जान रही है कि अपनी लड़ाई उसे खुद ही लड़नी है, अब वह जान रही है कि एक हाउसवाइफ की ड्यूटी निभाते हुए न उसके पास अपने लिए वक़्त है, न घर में कोई अलहदा कोना। वह अपने व्यक्तित्त्व के विस्तार के लिए तत्पर है, घर की चारदीवारी में बंद स्त्री को अब अनंत तक फ़ैली दिशाओं का विस्तार चाहिए-

'पृकृति की हरियाली सोखकर / संगीत से तरन्नुम चुराकर / पंखों से आज़ादी और / दृष्टि से अनंत का सार / भर कर कल्पना का विस्तार /'

पर यह उसकी चाहना है, इस कविता में अभी उस समय का आगमन नहीं दिखाई देता, क्योंकि अंतिम पंक्ति तक आते-आते फिर कटु सत्य पर ला छोड़ती है कवयित्री-

'रखना चाहती है पग / उस ज़मीन पर / जो ठीक उसके सामने से / ख़त्म कर दी जाती है।'

ये सारी कविताएँ एक विकासमान प्रक्रिया का हिस्सा बनकर आई हैं, स्त्री-जीवन की विकासमान गति की साक्ष्य कविताएँ ! आज स्त्री धीरे-धीरे जीवन की अवांछित स्थितियों से उबर रही है, वह टेक्नोलॉजी के समकालीन कालखंड में प्रवेश कर चुकी है और अपनी नई पहचान बना रही है –

'ये गुज़री सदी की लिखावटें और इबारत / डिलीट कर एंटर करती हैं औरतें / स्काइप पर /'

कवयित्री ने स्त्री को समकाल से जोड़ने के लिए कंम्प्यूटर, स्मार्ट फोन, मेट्रो और मोनो रेल से संबंधित शब्दावली का औजार के रूप में प्रयोग कर अपनी कल्पनाशक्ति का परिचय दिया है। कवयित्री इन कविताओं में स्त्री-समाज की प्रवक्ता का किरदार निभा रही है।

सामाजिक सरोकार को प्रमाणित करती कविताओं में 'मज़दूरी', 'अट्ठनी छिपाता बच्चा' और 'अम्मा' कविताएँ हमारी राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों की विडंबना को प्रस्तुत करती हुई इस दुखद वास्तविकता को दर्शाती हैं, कि आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी बच्चे खेलने और पढ़ने की जगह भीख माँगने को मजबूर हैं। जहाँ ज़िंदगी की ढलती शाम में एक वृद्धा रास्तों पर घूम-घूमकर गजरे बेचने को मजबूर है, उच्चवर्ग आज भी श्रम की महत्ता का आदर नहीं करता इसीलिए कठोर परिश्रम करके परिवार को पालनेवाले मज़दूर को फटकार के साथ मज़दूरी ऐसे देता है मानो भीख दे रहा हो।'मज़दूरी ' कविता भीड़ के अंत में खड़े इस आदमी के प्रति सरोकार व्यक्त व्यक्त करती है। कथाकार कमलेश्वर ने एक जगह रोष व्यक्त करते हुए पूछा था, क्या मजदूर की कोई सेल्फ-रेस्पेक्ट नहीं होती। असल में हम अभी भी अधिनायकतावादी मानसिकता से मुक्त नहीं हुए हैं।

'शहर' में व्यंजित होता है कि शहर में हम रह नहीं रहे, विस्थापित हो रहे हैं। क्या विकास की उठापटक में हम मानवीयता भी भूल गए हैं ! तो विकास कैसा ? जहाँ भाषा अपना अर्थ खो दे, अपना वजूद और अपना आशय खो दे। जज़्बात केवल एक अहसास

या स्मृति बनकर रह जाएँ। खुश्क नज़रें, रिक्त नज़रें - जहाँ मानवीय स्पर्श नदारद है। कवयित्री उस विकास को नकारती है जहाँ मानवीय संवेदना तिरोहित हो गई है। मानो व्यक्ति एक यंत्र बन गया है।

'मित्र ' कविता रिश्ते की उस खूबसूरती से सराबोर करती है, जो धीरे-धीरे जीवन से अदृश्य हो रहे हैं। यह रचना आशय की नहीं अभिव्यक्ति के वैशिष्ट्य की है। जहाँ संप्रेषण फोन के माध्यम से हो रहा है। दो मित्रों के बीच के इस रिश्ते को एक मित्र झिझकते हुए कैसे इस तरह निभा रहा है,

'कुछ सिखाना चाह रहे थे / कैसे उगाया जाता है शब्द / बीजों में कैसे सहेजा होता है जीवन / उपजाऊ बनाए जाने वाले विचार / कैसे प्रेषित कर रहे थे खाद की तरह'

सृजन-प्रक्रिया किसी को विरासत में देना, जब कि आज कोई अपनी ऐसी विरासत किसी को देना नहीं चाहता। रिश्ते को एक उर्द्धवगामी दिशा में ले जाना -

'दिया जा रहा था सब कुछ / जैसे जन्म लिए बच्चे को दिया जाता है सब कुछ / उसकी पूरी नासमझ बेसब्री के बावाजूद / देखते हुए बच्चे की ज़रूरत' फोन शब्द ने यहाँ अतिरिक्त भावुकता से कविता को बचा लिया है।

इस प्रकार कवयित्री अपने अतराफ धड़कते समय के फ़लक से उन मुद्दों को उठाती है जो एक रचनाकार की चिंता के केंद्र में रहकर उसे मथते है। अपनी अभिव्यक्ति के लिए रीता ने प्रकृति से लेकर आधुनिक जीवन, टेक्नोलॉजी और साथ ही स्त्री-भाषा का इस्तेमाल कर रचनाओं को नई अर्थवत्ता दी है। अभिनव प्रस्तुतीकरण रीता की रचनाओं को नई ताज़गी देता है और एक रचनाकार के रूप में उसे एक मौलिक पहचान भी ! उम्मीद करते हैं कि आगामी समय में और भी सशक्त रचनाओं के साथ रीता हमारे सामने होगी।

❐❐❐

10 मेफेअर, 3री मंझिल
वी.एन.रोड़, चर्चगेट
मुंबई - 400 020
09324610497
mjhindi@gmail.com

# एक कहानी, एक पत्र....

## 'पिंजड़े वाली मुनिया'

**कहानीकार : प्रेम भारद्वाज**
**पत्र : सुधा ओम ढींगरा**

(इंद्रप्रस्थ भारती के जनवरी अंक में कथाकार तथा पाखी के संपादक श्री प्रेम भारद्वाज की एक कहानी 'पिंजड़े वाली मुनिया' प्रकाशित हुई, जो बहुत चर्चित रही। उसी कहानी पर सुधा ओम ढींगरा की एक पत्र शैली में की गई टिप्पणी यहाँ पाठकों के लिए।)

प्रेम जी, सुबह की चाय पीते हुए आपकी कहानी पढ़ी। बहुत दिनों से चल रहे एक विषय के मनन को एक कहानी में पिरोए पाया तो ताज्जुब हुआ। साथ ही इस कहानी ने विमर्श के कई द्वार खोल दिए। अक्सर मेरे पास बहुत सी ऐसी महिलाओं के केस आते हैं, जो अपने जीवन की सब ज़िम्मेदारियों को पूरा करते हुए अवसाद की ओर बढ़ने लगती हैं। कुछ पूरी तरह अवसाद में चली जाती हैं; जिसका परिवार को बाद में पता चलता है और कई घोर निराश की ओर बढ़ रही होती हैं। साऊथ एशियम महिलाओं में यह अधिक पाया जाता है। कारण ज़िम्मेदारियों के बोझ तले दबी स्त्रियाँ यह भूल जाती हैं कि वे इंसान भी हैं। उनके संवेगों को इतना दबा दिया जाता है कि एक समय बाद भीतर शून्य पसरने लगता है और तब तक वे मशीन बन कर रह गई होती हैं। अधूरेपन का एहसास उन्हें होता है और भीतर एक तलाश शुरू होती है। अपनी होंद की, अपने अस्तित्व की। अपनी खोज शुरू होती है। रास्ता न मिलने पर अवसाद, घोर निराशा छाने लगती है। एक महीन सा, पर बेहद गहरा बिंदु है, जिसे आपने बड़ी सुघड़ता से बुना है। स्त्री अपने आप से प्रेम करना भूल जाती है।

बेटी, माँ, पत्नी, बहू, चाची, ताई, बुआ, दादी बन कर स्त्री सब ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए, वह औरत भी है, यह भूल जाती है। उसके भीतर संवेग हैं, भावनाएँ हैं, उसके भीतर एक और औरत बसती है, जिसका अपना एक संसार है, उसकी कुछ इच्छाएँ हैं, उन इच्छाओं से वह कभी उड़ना जानती थी। कल्पना की उड़ान भरना वह भूल चुकी होती है। वह अपने आपसे प्रेम करती थी। उसका वह प्रेम ज़िम्मेदारियों की भीड़ में कहीं खो गया था। भीतर छुपी औरत उसे ढूँढ़ती है। कल्पना के जादू से वह उसे ही जाग्रत करती है। कल्पना की उड़ान से वह अपनी सुप्त ऊर्जा को प्रज्ज्वलित करती है।

साऊथ एशियम महिलाओं के लिए यह आसान नहीं होता। उन्हें पारिवारिक और सामाजिक ऐसे साँचे में ढाला जाता है; जहाँ वह अधूरापन महसूस तो करती है, पर वह कुछ कर नहीं पाती। पश्चिम की महिला ज़िम्मेदारियाँ पूरा करके स्वयं की ओर भी ध्यान देती है; जो शौक वह बचपन में पूरे नहीं कर पाई थी, उन्हें पूरा करतीं हैं। परिवार साथ देता है। कई पेंटिंग में, कई चित्रकला, फ़ोटोग्राफ़ी, आर्ट-क्रॉफ्ट, मैराथन की दौड़, समाज सेवा,वॉलंटियर वर्क, कहने का भाव जो वे करना चाहती हैं और कर नहीं पाई थीं, वह करके स्वयं को और स्वयं के लिए निर्धारित ईश्वर प्रदत्त उद्देश्य को ढूँढ़ कर उस प्रेम में लीन हो जाती हैं। अपने पंखों को उड़ान देती हैं।

भीतर की औरत की उड़ान के बहाने सब स्त्रियों को कल्पना के पंख देतीऔर प्रेम के इस भिन्न स्वरूप को पूर्वग्रहों से ग्रसित सोच के बंद दरवाज़े-खिड़कियों से भीतर प्रेवश का मार्ग देती यह कहानी है। अलग सी कहानी लिखने के लिए प्रेम जी बधाई!!!

❐❐❐

# नया मीडिया : नया विश्व, नया परिवेश

डॉ. राकेश कुमार

परिवर्तन, प्रकृति का नियम है और यह नियम इस दुनिया के सभी विचारों, अवधारणाओं, वस्तुओं, स्थितियों, मनुष्य, पर्यावरण और स्वयं प्रकृति पर भी लागू होता है। यह परिवर्तन नई परिस्थितियों के प्रति नए मनुष्य की प्रतिक्रिया का परिणाम होता है। इतिहास साक्षी है कि नई परिस्थितियाँ और चुनौतियाँ नई तकनीकों को जन्म देती है। नया मीडिया भी इसका अपवाद नहीं है। मीडिया या माध्यम प्राचीन काल से ही किसी न किसी रूप में मनुष्य सभ्यता का हिस्सा रहा है। नए मीडिया का गहरा सम्बंध सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के साथ है। सूचना प्रौद्यौगिकी के विस्फोट ने दुनिया को पूरी तरह से बदल दिया। दुनिया इंटरनेट और कम्प्यूटर के माध्यम से इस प्रकार जुड़ गई है कि आज दुनिया का कोई भी कोना दूसरे कोने से अछूता नहीं रहा है। हम यह देखते हैं कि चाहे वह राजनीति का क्षेत्र हो अथवा व्यापार का, चाहे सुरक्षा का क्षेत्र हो अथवा अपराध का, चाहे साहित्य का क्षेत्र हो अथवा विज्ञान का, चाहे समाचारों का क्षेत्र हो अथवा मनोरंजन का; सभी क्षेत्रों में नए मीडिया ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। नए मीडिया को जन मीडिया भी कहा जाने लगा है क्योंकि इसमें आम-जन की भागीदारी निरंतर बढ़ रही है। इससे न सिर्फ परामपरागत मीडिया का स्वरूप बदल रहा है बल्कि भविष्य के मीडिया के प्रयोग भी नए मीडिया के माध्यम से होते दिखाई दे रहे हैं। इसलिए नए मीडिया के विविध पक्षों पर विचार-विमर्श की आवश्यकता है।

### नया मीडिया : अवधारणा और स्वरूप

सिनेमा से नए मीडिया की तुलना करते हुए लेव मेनोविच अपनी पुस्तक 'लैग्वेज ऑफ न्यू मीडिया' में लिखते हैं, कि सिनेमा देख कर उसका आनंद उठाना और उसके कथ्य को उसकी भाषा में समझ पाना एक बात है परंतु उसकी भाषा में जवाब दे पाना कठिन है। सिनेमा देखा-समझा तो जा सकता है परंतु उसे निर्मित कर पाना प्रत्येक व्यक्ति के लिए कठिन काम है। यहीं पर नया मीडिया पुराने सिनेमा-टीवी जैसे परम्परगत मीडिया से भिन्न हो जाता है। वास्तव में यह बड़ा फर्क इस नए माध्यम को बिलकुल ही नया चरित्र प्रदान करता है। इस माध्यम में संदेश निर्माण और संदेश प्राप्तकर्त्ता की बहुलता इसे विशिष्ट बनाती है। पुराने ढंग के माध्यमों में संदेश भेजने वाला एक तथा प्राप्तकर्त्ता अनेक होते थे वहीं इस माध्यम में संदेश भेजने और प्राप्त करने वाले अनेक हो सकते हैं। पाठ, दृश्य और ध्वनि के आधार पर यदि नए और पुराने मीडिया में अंतर किया जाए तो बात कुछ और साफ हो जाती है। ऐसा नहीं है कि पुराने मीडिया में पाठ, दृश्य और ध्वनि का संचार सम्भव नहीं था वहाँ भी इनका सम्प्रेषण सम्भव था, परंतु नए मीडिया की संवादात्मकता इसे विशिष्टता प्रदान करती है। इसीलिए इसे 'कोलेबोरेटिव मास मीडिया' भी कहा जाता है। जिसमें एक से अनेक तथा अनेक से एक की संवादात्मक अतंर्क्रियात्मकता शामिल रहती है। नया मीडिया मात्र तकनीक का ही नहीं बल्कि तकनीक के प्रयोग का भी नयापन लिए हुए है। यह व्यक्ति की सार्वजनिकता और सार्वजनिक की निजता का समीकरण है।

उन्नीसवीं और बीसवी शताब्दी में जितना परिवर्तन अभिव्यक्ति के क्षेत्र में आया उतना ही मानव सभ्यता का विकास हुआ। नया मीडिया इक्कीसवीं सदी का मीडिया है। नया मीडिया को उभरता हुआ मीडिया, या फिर डिजीटल मीडिया भी कहा गया। इस मीडिया ने अभी तक के चले आ रहे अभिव्यक्ति के तरीकों को पूरी तरह से बदल दिया है। संक्षेप में कहा जाए तो 'नया मीडिया एक ऐसा मीडिया है जिसने फिल्म, छवियों, संगीत, बोले और लिखित शब्द जैसे पारम्परिक मीडिया को कम्प्यूटर की इंटरैक्टिव शक्ति और संचार प्रौद्योगिकी विशेषकर इंटरनेट से जोड़ दिया है।' आज हम पूरी तरह से नए मीडिया से घिरे हुए हैं। नया मीडिया न केवल हमारे सार्वजनिक जीवन को प्रभावित कर रहा है बल्कि आज हम उसके बिना अपने निजी जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। आज हमारे जीवन का कौन सा ऐसा क्षेत्र है? जिसमें नया मीडिया न हो। शिक्षा, मनोरंजन, विज्ञान, पत्रकारिता, निजी व सरकारी कार्यालय, बैंकिंग, रक्षा, चिकित्सा, उद्योग, वैश्विक बाज़ार, कृषि, मौसम, पर्यावरण, खेल, तकनीक, सूचना प्रौद्योगिकी जैसे विविध और महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में नया मीडिया अपनी उपयोगिता सिद्ध कर रहा है। आर. अनुराधा के शब्दों में, 'नया मीडिया यानी आम आदमी की देश-काल की सीमाओं को तोड़ती हुई डिजिटल माध्यम से की गई इंटरएक्टिव अभिव्यक्ति' अनुराधा की इस परिभाषा में कुछ बातें महत्त्वपूर्ण है- पहला आम आदमी दूसरा देश-काल की सीमाओं का अतिक्रमण तीसरा डिजिटल और चौथा इंटरएक्टिव अभिव्यक्ति। आम आदमी के हाथ में मीडिया के आने का सीधा अर्थ यही है कि नए मीडिया के आने से पहले आम आदमी मीडिया का सिर्फ उपभोक्ता था।

मीडिया के उत्पादन और प्रसारण का स्थान उसकी पहुँच से कहीं दूर स्थित होता था। वह मात्र देख-सुन-पढ़ सकता था। उसके विचारों, प्रतिक्रियाओं और उसकी समझ के लिए मीडिया में कोई स्थान नहीं था। वह अधिक से अधिक समाचार पत्रों या रेडियो टीवी के लिए पत्र लिख सकता था परंतु उसके पास ऐसा कोई

ज़रिया नहीं था कि वह उसका प्रयोग कर अपने अनुसार कार्यक्रमों को बनवा सकता अथवा यदि कोई कार्यक्रम उसे पसंद नहीं आ रहा तो वह उस कार्यक्रम को हटा सकता। परंतु नए मीडिया के आने से यह स्थिति बदल गई। आज आम आदमी मीडिया का मात्र उपभोक्ता ही नहीं है अपितु वह मीडिया का उत्पादक भी है। वह अपने ब्लॉग, ट्विटर, फेसबुक, वाट्सएप वैबसाइट के माध्यम से अपनी बात रख सकता है। अपने विचारों को लिख सकता है और अपने देखे समाज में चल रहे घटनाक्रम का वह अब मात्र साक्षी नहीं है वह एक पत्रकार की भाँति उसकी रिपोर्टिंग कर सकता है। दूसरी बात यह है कि परम्परागत मीडिया की भाँति वह अब सूचनाओं, समाचारों और मनोरंजन आदि के लिए किसी एक माध्यम का दास नहीं है बल्कि अब उसके सामने पूरी दुनिया खुल गई है। वह अब अपनी बात अपने क्षेत्र कस्बे तक ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया तक पहुँचा सकता है। इस तरह से वह अपने क्षेत्र-कस्बे को पूरी दुनिया से जोड़ रहा है। इतना ही नहीं पूरी दुनिया में जो कुछ भी घटित हो रहा है उससे अपने क्षेत्र-कस्बे के लोगों को अवगत करा सकता है। इसने आम आदमी की सोच मे बड़ा परिवर्तन कर दिया है। इसमें उसका सहारा बना है इंटरनेट से जुडाव। इंटरनेट ने आम आदमी को विविध प्रकार के विषयों और विविध प्रकार की समस्याओं से भी परिचित करा दिया है। सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह आया है कि नया मीडिया एक अंतर्क्रियात्मक मीडिया है। इसमें दो तरफा ही बल्कि अनेक तरफा संवाद सम्भव है। उदाहरण के लिए जब आप अपनी कोई पोस्ट फेसबुक या फिर ट्विटर पर लिखते हैं तो उस पर न जाने कितने ही लोग एक साथ बात कर सकते हैं। इसे ही कुछ कुछ मीडिया विशेषज्ञ नए प्रकार के जनतंत्र का नाम भी दे रहे हैं। इसका बहुत बड़ा आधार यह मुक्ति है जिसके कारण कोई भी व्यक्ति किसी भी विषय पर अपने विचार रख सकता है। वह दूसरे के विचारों से अवगत भी हो सकता है और दूसरों को अपने विचारों से भी परिचित करा सकता है। जय प्रकाश मानस लिखते हैं, 'नया मीडिया सच्चे अथर्रें में मीडिया का जनतंत्रीकरण है और जनता का मीडियाकरण भी। कदाचित यही वह संदर्भ है जिसके कारण दुनिया भर के समाजशास्त्रियों का एक वर्ग इसे डिजिटल डेमोक्रसी-जैसे श्रेष्ठ विभूषण से नवाज रहा है। नया मीडिया एक साथ व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों हैं। इसमें संवाद, संचार, विचार-विमर्श, राजनीतिक प्रचार, सामाजिक लामबंदी, आदी सारी सम्भावनाएँ मौजूद हैं। पारम्परिक मीडिया के नाम यह अद्भुत ताकत नहीं थी, पर नए मीडिया के देह और हृदय में ऐसी डिजिटल वर्चुअल ताकत दर्ज हो चुकी है जो आपके संचार के साथ-साथ आपके ऊपर नजरदारी भी करता है। नया मीडिया सही मायने में किसी भी समय, कहीं से भी, किसी भी डिजिटल माध्यम से परस्पर संवादधर्मी उपयोगकर्त्ता या पाठक दर्शक, श्रोता के साथ मीडिया सामग्री के रचनात्मक उपयोग की प्रविधि है।' अगस्त 2015 की एक रिपोर्ट के अनुसार नए सोशल मीडिया का उपयोग करने वालों की संख्या 134 मिलियन तक पहुँच चुकी थी। वर्ष 2016 में यह संख्या 216.5 मिलियन और 2018 में 283 मिलियन होने जा रही है। यह अनुमान लगाया जा रहा है कि यह संख्या वर्ष 2021 तक 358.2 मिलियन तक पहुँच जाएगी। विशेष बात यह है कि इनमें से अधिकांश लोग मोबाइल के माध्यम से सोशल मीडिया से जुड़ रहे हैं। नया मीडिया अनेक उन लोगों को भी स्वर प्रदान कर रहा जिन्हें परम्परागत मीडिया में स्थान या तो नहीं मिलता था या फिर इतना कम मिलता था कि उनकी आवाज़ कहीं सुनी नहीं जाती थी। आज नए मीडिया की ही यह ताकत है कि तमाम राजनीतिक दल और व्यापारिक संस्थान जनता से सम्पर्क के लिए नए मीडिया का प्रयोग कर रहें। तमाम प्रशासनिक व्यवस्थाएँ भी ऑनलाइन होती जा रही हैं। इससे पारदर्शिता भी आई है और सहूलियात भी। इस माध्यम की एक विशेषता इसकी आर्काइव की है। आप अपना लिखा कई बरस बाद भी देख सकते हैं। आप ही नहीं अपितु दुनिया के किसी भी कोने में बैठा हुआ व्यक्ति बरसों बाद भी आपके लिखे को पढ़ सकता है। टेक्स्ट ही नहीं बल्कि संगीत और वीडियो के कार्यक्रम भी वह देख सकता है। यह माध्यम गेटकीपिंग की व्यवस्था से मुक्त है। इसलिए इसे मुक्त माध्यम भी माना जाता है। जिसका परिणाम यह है कि अनेक बार पत्रकारिता के सामान्य नियमों से लेकर सामान्य शिष्टाचार तक की अनदेखी कर दी जाती है।

## नया मीडिया : प्रमुख क्षेत्र

**1. नया मीडिया और राजनीति-** सूचना क्रांति के विस्फोट ने भारत समेत दुनिया के सभी देशों में इंटरनेट आधारित नए मीडिया को चुनावी प्रचार का एक प्रिय माध्यम बना दिया है। विशेषत: भारत जैसे देश में जहाँ की जनसंख्या का अधिकांश युवा है और अपने अनेक कामों के लिए इंटरनैट पर निर्भर है, वहाँ पर यह लाज़िमी हो जाता है कि चुनावों में प्रत्येक स्मार्टफोन, टैबलेट और लैपटॉप पर पार्टी का विज्ञापन पहुँचाया जाए। नए मीडिया की यह विशेषता है कि वह दुनिया भर में कहीं भी पहुँच सकता है। मीडिया के अन्य माध्यमों की तरह इसे किसी स्थानीय बंदिश में बाँधा नहीं जा सकता। आज राजनीतिक दल, वाट्सएप, फेसबुक, ट्विटर, वैबसाइट विज्ञापन, एस.एम. एस., मिस्ड कॉल अभियान, ब्लॉग, ई-मेल आदि का प्रयोग बेधड़क होकर कर रहे हैं। वर्ष 2014 के राष्ट्रीय चुनावों में सोशल मीडिया का जम कर उपयोग किया गया। एक रिपोर्ट के अनुसार इन चुनावों में लगभग 30000 करोड़ रुपए का व्यय होने का अनुमान था। 'इनमें से राजनीतिक पार्टियों के प्रचार में कुल चार से पाँच हज़ार करोड़ रुपये के बजट में डिजिटल मीडिया पर कम से कम पाँच सौ करोड़ तो खर्च ही किए गए थे। चुनाव में सोशल मीडिया के इस्तेमाल पर भारत के मुख्य निर्वाचन आयोग को दिशा-निर्देश जारी करने पड़ गए। राजनैतिक दलों से कहा गया कि वो इंटरनेट पर अपने खातों और खर्चों को सार्वजनिक करें। अपने निर्देश में आयोग ने पाँच प्रकार के सोशल मीडिया की पहचान की- 1. सहयोगपूर्ण प्रोजेक्ट (विकिपीडिया) 2. ब्लॉग और माइक्रोब्लॉग्स (ट्विटर)3. कंटेट समुदाय ( यू ट्यूब) 4. सोशल नेटवर्किंग साइटें

(फेसबुक) 5. वर्चुअल गेम्स (एप्लीकेशन) इस अवसर पर जारी निर्वाचन आयोग की विज्ञप्ति में कहा गया कि –''चुनाव प्रचार से जुड़े कानूनी प्रावधान सोशल मीडिया पर भी उसी प्रकार से लागू होते हैं जिस प्रकार से वो किसी अन्य मीडिया पर लागू होते हैं''

**2. नया मीडिया और समाज**–नए मीडिया के विकास का सामाजिक परिस्थितियों और राजनीतिक घटनाक्रम के साथ गहरा सम्बंध है। वैश्वीकरण ने पूरी दुनिया को एक विश्व ग्राम में बदलने का प्रयास किया। वैश्वीकरण की अर्थव्यवस्था ने देशों की सीमाओं का अतिक्रमण कर दिया। जिसके कारण दुनिया भर के देशों की अर्थव्यवस्थाएँ एक दूसरे से जुड़ गईं। इसी प्रकार संचार क्रांति ने भी दुनिया भर के देशों का एक-दूसरे से जोड़ दिया है। अब एक देश के समाज के बारे में दूसरे देश के समाज के लोग बेहतर जानते हैं। भारतीय समाज भी मीडिया के इस व्यापक विस्तार से प्रभावित हुआ है। आज सोशल मीडिया ने लोगों को एक-दूसरे के साथ जुड़ने और अपने समय और समाज की समस्याओं को एक-दूसरे से साझा करने के अनेक अवसर प्रदान कर दिए। वाट्सएप और फेसबुक भारत में सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में इंटरनेट प्रयोग करने वाले 56 प्रतिशत लोग वाट्सएप और 51 प्रतिशत लोग फेसबुक का प्रयोग करते हैं। फेसबुक के स्वामित्त्व वाले वाट्सएप के पूरी दुनिया में 900 मिलियन प्रयोक्ता बताए जाते हैं जिसमें से अधिकांश भारत में हैं। परंतु जहाँ एक ओर यह जुड़ाव आया है वहीं सामाजिक-रूढ़िवाद, जातिवाद, धार्मिक कट्टरता स्त्रियों के प्रति अपराध, दलितों और अल्पसंख्यकों के प्रति सामाजिक घृणा के प्रचार के लिए भी नए मीडिया का उपयोग किया जाने लगा है। दलितों के साथ-साथ अल्पसंख्यकों के प्रति भी अनेक बार भड़काऊ पोस्ट तथा वाट्सएप मैसेज भी साझा होते हैं। यह समाज के लिए घातक हो सकता है।

**3. नया मीडिया और संस्कृति**–संस्कृति किसी भी समाज की पहचान का महत्त्वपूर्ण चिन्ह है। समाजशास्त्री भीखू पारेख मानते हैं कि संस्कृति एक इतिहास द्वारा निर्मित विश्वासो और प्रथाओं की व्यवस्था है जिसके संदर्भ में व्यक्ति और समूह अपने जीवन को समझता और व्यवस्थित करते है। संस्कृति, व्यक्ति को जीने का सलीका और समाज को जीवन की व्यवस्था देती है। समाज की भाँति संस्कृति पर भी मीडिया का गहरा प्रभाव पड़ता है। पुराने मीडिया में जहाँ व्यक्ति मात्र कंटेट का उपभोक्ता था वहीं अब वह कंटेट को निर्मित भी कर रहा है। संस्कृति को बचाए रखने के लिए अनेक संस्थाएँ व व्यक्ति अब लुप्त होते जा रहे सांस्कृतिक चिन्हों, परम्पराओं और बोलियों का डिजिटल दस्तावेजीकरण भी कर रहे हैं। परंतु नए मीडिया ने संस्कृति के नाम अनेक प्रकार की रूढ़ियों को भी प्रचारित किया है। संस्कृति के नाम आजकल धार्मिक कर्मकांडों को ही अधिक महत्त्व दिया जाने लगा है। इसी प्रकार सांस्कृतिक विरासत का विरूपीकरण करके आने वाली पीढ़ियों को गुमराह करने का प्रयास भी किया जाने लगा है। नया मीडिया चूँकि अधिकांशत: छन्नी रहित है इसलिए अनेक बार संस्कृति के स्थान पर अपसंस्कृति का प्रसार भी नए मीडिया के माध्यम से हो रहा है। इसके प्रति जागरुक और सावधान रहने की आवश्यकता है।

**4. नया मीडिया और व्यापार**– आज बडे कॉरपोरेट घरानों से लेकर नए स्टार्टअप तक सभी आज नए मीडिया की शक्ति को पहचानते हैं। इसलिए अपने विज्ञापनों के माध्यम से नए उपभोक्ता बनाने से लेकर पुराने उपभोक्ताओं तक अपने नए उत्पादों को पहुँचाने के लिए नए मीडिया का उपयोग कर रहे हैं। आज कम्पनियाँ अपना आधिकारिक यूट्यूब अकांउट, फेसबुक पेज और ट्विटर हैंडल अवश्य बनाती हैं। उपभोक्ता किसी उत्पाद विशेष के पेज या हैंडल पर जाकर या फिर कम्पनी के पेज या हैंडल पर जाकर अपनी बात रख सकता है। कम्पनियाँ भी अपने उत्पादों के नए मॉडल को लेकर भी नए मीडिया के मंच पर आती हैं। यह माध्यम पुराने माध्यम की अपेक्षा कम खर्चे वाला है और पुराने माध्यम की तरह सभी को एक ही तरह का संदेश नहीं भेजता बल्कि यह उपभोक्ता को उसकी रुचि और समय के अनुसार संदेश भेज सकता है। इसके माध्यम कम्पनियाँ एक लक्षित संदेश भेजती हैं। अत: यह नया मीडिया ने व्यापार करने के तरीके बदल डाले हैं। उदारीकरण और सूचना क्रांति ने ई-कॉमर्स जैसे नए व्यापार-विचार को जन्म दिया है। बाज़ार आज साक्षात ही नहीं बल्कि वर्चअल भी हो गए हैं। उपभोक्ता घर बैठे-बैठे दुनिया जहान से अपने काम की चीज़ें मंगा सकता है। आज भारत में अमेजॉन, फ्लिपकार्ट, स्नैपडील, आस्क मी बाज़ार जैसे मल्टी ब्रांड की ई-कॉमर्स साइट्स चल रही हैं जिनका सालाना टर्नओवर करोड़ों में पहुँच चुका है।

**5. नया मीडिया और वैश्विक एक्टीविज़्म**– नया मीडिया सामाजिक एक्टीविज़्म का एक बेहतरीन मंच है। इसके माध्यम से समाज-सुधार, पर्यावरण, युद्ध विरोध, भूमंडलीकरण विरोध तथा विश्व शांति के संदेश को बड़ी सहजता से विश्व के कोने-कोने तक पहुँचाया जा सकता है। आज विश्व स्तर पर काम करने वाली जितनी भी संस्थाएँ हैं या गैर सरकारी संगठन हैं वे नए मीडिया के विभिन्न रूपों का प्रयोग कर रही हैं। नए मीडिया का लाभ यह भी है कि सरकारी दबाव और दमन का सामना करते हुए भी इसके माध्यम से सरकारी नीतियों का लोकतांत्रिक विरोध किया जा सकता है। विशेषत: पर्यावरण से सम्बंधित मुद्दों को सामने लाने के लिए यूट्यूब, फेसबुक और अन्य सोशल मीडिया नेटवकरें का उपयोग किया जा रहा है।

**6. नया मीडिया- अपराध और हिंसा**– नया मीडिया एक अबाधित माध्यम है। वह उपयोगकर्त्ता को एक निजता देता है। ऐसी निजता कि जिसमें उपयोगकर्त्ता पूरी दुनिया भर से कंटेट को देख सकता है। इंटरनेट के माध्यम से आज न केवल जनपक्षधर सामग्री और सूचनाएँ साझा हो रही हैं बल्कि लाखों की संख्या उन पृष्ठों की है जो अपराध और हिंसा को बढ़ावा देते हैं। आज जहर बनाने से लेकर बम बनाने तक की तकनीक इंटरनेट पर मौजूद है। जिसे देख कर अनेक लोग बड़ी सहजता के साथ बम बना सकते हैं। यही नहीं वीडियो गेम्स के दुश्प्रभावों को लेकर भी बड़ी चिंताएँ जाहिर की जा रही

हैं। नए मीडिया की शक्ति का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि एक फेसबुक पोस्ट पूरे शहर में कर्फ्यू का सबब बन सकती है। नया मीडिया, कानून और व्यवस्था के लिए एक बड़े सिरदर्द की तरह भी बन कर उभरा है

**7. नया मीडिया और वैश्विक आंतकवाद**- नया मीडिया का उपयोग वैश्विक आंतकवाद को बढ़ाने के लिए भी किया जाने लगा है। आंतकवादी संगठन यूट्यूब, फेसबुक, ट्विटर, ब्लॉग जैसे सामाजिक मीडिया मंचों और टेलीग्राम, हाइक और वाट्सएप जैसी संदेश सेवाओं के माध्यम से बेरोज़गार, दिशा भ्रमित युवकों का ब्रेनवॉश करने के लिए कर रहे हैं। ये संगठन धर्म के नाम पर अनेक प्रकार की भ्रामक सामग्री को प्रसारित करते हैं जिसके प्रभाव में आकर अनेक नवयुवक आंतकवाद का रास्ता पकड़ लेते हैं, जिसके परिणाम अत्यंत भयानक हुए हैं। आंतकवाद की यह समस्या न तो किसी एक देश तक सीमित है और न ही किसी एक धर्म तक। यूनाइटेड नेशन के जनरल सैक्रेटर बान की मून ने कहा था पूरी दुनिया के देश इससे प्रभावित हो रहे हैं। पूरी दुनिया इस वैश्विक आंतकवाद के दंश को झेल रही है। अमेरिका पर हुए 11 सितम्बर के हमले के बाद से दुनिया भर में आंतकवाद का चेहरा निरंतर क्रूर ही हुआ है। मध्य एशिया में आइसिस का बढ़ता हुआ साम्राज्य एक चुनौती बन चुका है लेकिन सबसे अधिक चिंता की बात यह है कि दुनिया के समृद्ध देशों से हज़ारों की संख्या में शिक्षित नौजवान इस आंतकवादी संगठन की हिस्सा बनने के लिए अपने-अपने देशों से चोरी-छुपे सीरिया और इराक पहुँच रहे हैं। इन युवकों के विषय में जब छानबीन की गई तो यह पाया गया कि इनमें से अनेक इंटरनेट के माध्यम से मिल रही भड़काऊ सामग्री से प्रभावित होकर आंतक की राह पर चल पड़े।

## नया मीडिया : सीमाएँ और चुनौतियाँ

जहाँ एक ओर नया मीडिया नए अवसर लेकर आया है वहीं नए मीडिया ने नई चुनौतियाँ भी प्रस्तुत की हैं। जहाँ एक ओर अभिव्यक्ति के नए मंच उपलब्ध कराए हैं वहीं निर्बाध अभिव्यक्ति ने अपराध और आंतकवाद को भी बढ़ावा दिया है। पत्रकारिता को विस्तार दिया है वहीं झूठी खबरों को प्रसारित करने का माध्यम भी उपलब्ध करा दिया है। इसलिए नया मीडिया वरदान भी है और अभिशाप भी। नए मीडिया की कुछ चुनौतियाँ इस प्रकार हैं-

**1. सत्यापन**- यह नए मीडिया की सबसे बड़ी चुनौती है। पत्रकारिता के पेशे में सत्यापन पहला आधार है जिस पर पत्रकारिता का पूरा अस्तित्त्व खड़ा होता है। पाठक या दर्शक मीडिया पर इसीलिए भरोसा करता है कि मीडिया सच ही दिखाएगा परंतु जिस प्रकार डिजिटल तकनीक का विकास हुआ उसके कारण झूठी खबरें, चित्र, वीडियोज़ और संदेश मीडिया दिखाने लगता है। इसे आज की भाषा में वायरल होना कहते हैं। अनेक बार बिना स्वायत्त सूत्र के सत्यापन के भी खबर जब ऑनलाइन मीडिया में फैल जाती है तब उसके परिणाम अत्यंत भयानक होते हैं। फोटोशॉप की तकनीक का सहारा लेकर अनेक ऐसे चित्र मीडिया में आ जाते हैं जिनकी सत्यता संदिग्ध होती है। ये चित्र किसी व्यक्ति, समुदाय, धर्म और जाति विशेष के खिलाफ जनमानस में भ्रम फैलाने के लिए कुछ असामाजिक तत्त्व करते हैं। इसलिए सोशल मीडिया, वाट्सएप, मैसेंजर, अथवा हाइक जैसे माध्यमों से प्राप्त संदेशों को जाँचना-परखना बहुत अधिक आवश्यक है।

**2. ट्रॉलिंग**- आज नए मीडिया की एक बड़ी चुनौती ट्रॉलिंग है। वैसे तो ट्रॉल शब्द का अर्थ है बारी-बारी से गाना या प्रशंसा गान करना परंतु नए मीडिया के सम्बंध में ट्रॉल का अर्थ इससे विपरीत है। यह देखने में आ रहा है कि जैसे ही कोई व्यक्ति प्रचलित सत्ता-पोषित विमर्शों के विपरीत कोई बात कहता है तो कुछ व्यक्तियों का समूह उस व्यक्ति पर व्यक्तिगत छींटाकशी से लेकर भयानक धमकियाँ तक दी जाती हैं। इन धमकियों का एक ही उद्देश्य होता है कि किस प्रकार व्यक्ति को अपनी बात कहने से रोका जाए। पिछले दिनों क्रिकेटर मोहम्मद शमी को अपनी पत्नी को फोटो साझा करने और दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्रा गुरमेहर को ट्रॉल करने वालों ने देशद्रोही कहा और गुरमेहर के साथ सामूहिक बलात्कार करने की धमकी दी गई। इससे अभिव्यक्ति की आज़ादी पर बड़े सवाल खड़े हो रहे हैं। कई बार ट्रॉल पेड समर्थक भी होते हैं क्योंकि किसी व्यक्ति को ट्रॉल करने के लिए बाकायदा तकनीकी रूप से दक्ष लोगों को लगाया जाता है ताकि उन तक कानून न पहुँच सके। अनेक बार ये ट्रॉल किसी न किसी राजनीतिक दल से भी जुड़े होते हैं। यह नए मीडिया के बहुत बड़ा खतरा बन कर उभरे हैं।

**3. नियामकता**- नया मीडिया चूँकि एक नया माध्यम भी है इसलिए इसके उपयोग-दुरुपयोग को लेकर बहस होना लाज़िमी है। इसके बरक्स पत्रकारिता, विचारों और सूचनाओं की अभिव्यक्ति का एक बहुत पुराना, संगठित और स्थापित माध्यम है। इस माध्यम में प्रत्येक स्तर पर इस प्रकार की व्यवस्था है कि यदि कोई तथ्यात्मक भूल जा रही है तो उसे रोका जा सके। स्ट्रिंगर रिपोर्टर से लेकर प्रधान सम्पादक तक अनेक स्तरों पर सूचनाओं की जाँच-परख हो सकती है परंतु अब बदले हुए परिदृश्य में सम्पादक के पद की वह शक्ति नहीं रह गई है जैसाकि पहले हुआ करती थी। अब प्रकाशन घराने का प्रबंधन और मार्केटिंग विभाग यह निर्णय लेता है कि किस प्रकार की खबरें लगाई जाएँगी। इसलिए यदि सम्पादन न हो तो बहुत सारा कचरा भी प्रकाशित हो सकता है जिसकी जिम्मेदारी लेनी होगी। इसलिए एक आचार संहिता प्रयोक्ताओं को स्वयं बनानी होगी। गेटकीपिंग के न होने से सिर्फ नुकसान हुआ हो, ऐसा नहीं है। पूरी दुनिया में जो ब्लॉगिंग की क्रांति आई उसके पीछे इसी गेटकीपिंग का न होना ही एक बड़ा कारण था क्योंकि इसके अभाव में ब्लॉगर बिना किसी राजनीतिक-आर्थिक दबाव के अपनी बात रख सके। नए माध्यमों को वैकल्पिक मीडिया बनाने वाले कारकों में से एक बड़ा कारक यह भी है।

**4. डिजिटल डिवाइड**- डिजिटल डिवाइड एक बड़ी समस्या और चुनौती के रूप में नए मीडिया के सामने आया है। भारत में यह डिजिटल डिवाइड बहुत

अधिक बड़ा है। जिस देश की अधिकांश आबादी के पास स्वच्छ पेय जल और शौचालय की सुविधा नहीं है उस देश में 'डिजिटल डेमोक्रेसी' की बात करना अति आशावादी विचार होगा। वैसे तो भारत में अनेक क्षेत्रों में विभेद मौजूद है जैसे सामाजिक-विभेद, आर्थिक-विभेद, धार्मिक-विभेद, शैक्षणिक-विभेद आदि परंतु दूरसंचार और मीडिया के क्षेत्र में विभेद किसी अन्य विभेद से कमतर नहीं है। भारतीय समाज में डिजिटल डिवाइड के बावजूद अनेक लोग नैटीज़न अथवा डिजिटल सिटिज़नशिप या डिजिटल नागरिकता की बात कर रहे हैं। अंतर्राष्ट्रीय टेलिकॉम यूनियन के अनुसार भारत में इसी डिजिटल डिवाइड को कम करने के लिए भारत सरकार ने डिजिटल इंडिया कैम्पेन चलाया है। जिसके अंतर्गत वर्ष 2018 के अंत तक अधिकांश जनता तक इंटरनेट को पहुँचाया जाएगा। इसके लिए सरकार ने 1.13 लाख रुपए का प्रावधान किया है। डिजिटल साक्षरता का एक अन्य कार्यक्रम भी चलाया जाएग जिसके अंतर्गत पूरे भारत में प्रत्येक घर के कम से कम एक व्यक्ति को डिजिटल साक्षर बनाया जाएगा। इंटरनेट का वास्तविक लाभ तभी मिल सकेगा जब स्थानीय भाषाओं में जब कंटेट मिल सकेगा। आज जब पूरे देश में विमुद्रीकरण, ऑनलाइन पेमेंट, मोबाइल वॉलेट और कैशलस अर्थव्यवस्था की चर्चा की जा रही हैं तब सरकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह डिजिटल डिवाइड ही है, क्योंकि आज भी भारतीय समाज का बहुत बड़ा हिस्सा इंटरनेट उपयोग नहीं करता।

**5. साइबरबाल्कनाइजेशन**- कुछ विद्वानों ने साइबर बाल्कनाइजेशन की अवधारणा प्रयोग किया है। यह अवधारणा प्रथम विश्वयुद्ध के बाद यूरोप की स्थिति से प्रभावित है। यूरोप उस समय ऑटोमन साम्राज्य की समाप्ति के बाद जिस तरह से छोटे-छोटे जातीय और राजनीतिक खंडों में बंट गया था उसी प्रकार आज इंटरनेट के माध्यम से नए मीडिया से जुड़ने वाला प्रयोक्ता भी सिर्फ अपने ही रुचि की सूचनाएँ पाता है। इससे नए मीडिया ने जो 'पब्लिक स्फीयर' तैयार किया था वह खंडित हो जाता है और प्रयोक्ता अन्य व्यापक विचारों से वंचित रह जाता है। इस प्रक्रिया में अनेक रूढ़िवादी विचार नए मीडिया के माध्यम से एक ही वृत्त में घूमने लगते हैं।यह एक नए प्रकार के घेटोकरण (ळीमजजव) या पृथक्करण की प्रक्रिया को जन्म देता है। इसमें व्यक्ति के जानने-समझने और प्रतिक्रिया देने का बोध सीमित हो जाता है।

## निष्कर्ष

नए मीडिया का नयापन तकनीक, भाषा, अभिव्यक्ति के तरीके और विषयवस्तु सभी में हैं। नए मीडिया ने सामाजिक विमर्शरें को गति और राजनीतिक सहभागिता को नए आयाम दिए। आज के समाज का कोई भी हिस्सा ऐसा नहीं है जोकि नए मीडिया के प्रभाव से अछूता हो। आज राजनीतिक दलों से लेकर बड़े व्यापारिक घराने तक यह बात जान चुके हैं कि नए मीडिया की पहुँच और व्याप्ति परम्परागत मीडिया से कहीं अधिक हो चुकी है। इसलिए चुनावों के समय में राजनीतिक दल अपने घोषणापत्रों को नए मीडिया के माध्यम से सीधे जनता तक पहुँचा देते हैं। यही नहीं प्रत्येक राजनेता भी अपने नए मीडिया प्रकोष्ठ के माध्यम से सीधे जनता से संवाद कर रहा है। फेसबुक, ट्विटर, और वाट्सएप जनता से सीधे संवाद के नए माध्यम बनकर उभरे हैं। यही नहीं सरकारें भी जनता से सीधे जुड़ने के लिए एप्स का सहारा ले रही हैं। नया मीडिया एक शक्ति है तो चुनौती भी। नए मीडिया के माध्यम से जहाँ एक ओर आम उपभोक्ता को सहूलियत हुई है वहीं अनेक प्रकार के अपराध भी इसके जरिए फैल रहे हैं। वैश्विक आंतकवाद और अनेक वित्तीय अपराधों के लिए अपराधी नए मीडिया का उपयोग कर रहे हैं। ज़रूरत इस बात की है कि नए मीडिया की शक्ति को जनोपयोगी कामों में लगाया जाए और इसका पूरा लाभ उठाया जाए।

❐❐❐

एसोसिएट प्रोफेसर,
रामलाल आनंद महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

## पुस्तकें इन दिनों....

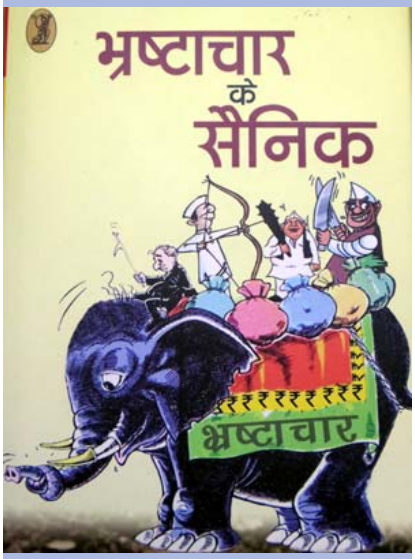


**भ्रष्टाचार के सैनिक ( व्यंग्य संग्रह )**
**प्रेम जनमेजय**
**प्रकाशन : वाणी प्रकाशन**

व्यंग्य हिन्दी साहित्य की एक ऐसी विधा है जो आज भी अपने अस्तित्व के लिये संघर्षरत् है। जो गिने-चुने नाम इस विधा के लिये संघर्ष कर रहे हैं उनमें प्रेम जनमेजय का नाम सबसे प्रमुख है। वे व्यंग्य लेखन के साथ-साथ व्यंग्य पत्रिका का संपादन, व्यंग्य केंद्रित समारोहों के आयोजन जैसे कार्य भी पूरी सक्रियता के साथ कर रहे हैं। भ्रष्टाचार के सैनिक उनका नया व्यंग्य संग्रह है। इसमें उनके इकतालीस व्यंग्य संग्रहित हैं। प्रेम जनमेजय की भाषा तथा शैली उन्हें आम पाठक के साथ सीधे जोड़ देती है। इस व्यंग्य संग्रह के सारे व्यंग्य पठनीयता के तत्त्व से भरपूर हैं। और लगभग सारे व्यंग्य लेखों में संवादों के माध्यम से बात कही गई है। चुटीले तथा तीखे संवाद पाठक को गुदगुदाते भी हैं और अपनी बात भी कह जाते हैं। क्यों चुप तेरी महफ़िल में है ? जैसे व्यंग्य तो पूरी तरह से संवादों के माध्यम से ही आगे बढ़ते हैं। आग लगाने की ज़रूरत नहीं है, आग को क़ाबू करने की ज़रूरत है, जैसे संवाद पाठक को एकदम गंभीर कर देते हैं। पूरे व्यंग्य संग्रह में प्रेम जनमेजय के यह तेवर बने रहते हैं। एक अत्यंत पठनीय व्यंग्य संग्रह।

❐❐❐

## तरही मुशायरा
## तरही मिसरा
## 'आओ रँग दें तुम्हें इश्क़ के रंग में'

### नुसरत मेहदी

मैंने लिक्खी ग़ज़ल जब तेरे रंग में
आ गए सब के सब क़ाफिये रंग में
भूलकर सारे शिकवे गिले रंग में
'आओ रँग दें तुम्हें इश्क़ के रंग में'
ऐसी होली कि ता आसमाँ रंग है
आग पानी हवा सब घुले रंग में
सुब्ह से रंग चूनर बदलती हुई
तू ही तू है मगर हर नए रंग में
जिस्म से रूह तक तर बतर कर गया
इश्क़ था इश्क़ है परद ए रंग में
सोच में हूँ कि रक़्स ए भँवर तो नहीं
बन रहे हैं जो ये दायरे रंग में
हम से सहरा मिज़ाजों को रँगना है गर
कुछ जुनूँ भी मिला, बावरे, रंग में
रंग चेहरे पे हों लाख 'नुसरत' मगर
मत डुबोना कभी आईने रंग में

### रजनी नैयर मल्होत्रा

राधिका रँग गई श्याम के रंग में
तुम भी रँग जाओ ऐसे मेरे रंग में
मैं तेरे रंग में तू मेरे रंग में
दोनो खो जाएँ हम मदभरे रंग में
क्या रखा लाल पीले हरे रंग में
आओ रँग दें तुम्हें इश्क़ के रंग में
चढ़ गया है नशा सबपे फागुन का यूँ
हर कोई झूमता है नए रंग में
पीत पट का वसन और अधर लाल हैं
साँवरे जँच रहे साँवले रंग में
कह रहा मुझसे ये मेरा मन बावरा
मैं भी घुल जाऊँ केसर घुले रंग में
है लिबास अपना मौसम बदलने लगा
अब धरा दिख रही है हरे रंग में

### राकेश खंडेलवाल

सोच की खिड़कियाँ हो गई फ़ाल्गुनी
सिर्फ़ दिखते गुलालों के बादल उड़े
फूल टेसू के कुछ मुस्कुराते हुए
पीली सरसों के आकर चिकुर में जड़े
गैल बरसाने से नंद के गाँव की
गा रही है उमंगें पिरो छन्द में
पूर्णिमा की किरन प्रिज़्म से छन कहे
आओ रँग दें तुम्हें इश्क के रंग में
स्वर्णमय यौवनी ओढ़नी ओढ़ कर
धान की ये छरहरी खड़ी बालियाँ
पा निमंत्रण नए चेतिया प्रीत के
स्नेह बोकर सजाती हुई क्यारियाँ
साग पर जो चने के है बूटे लगे
गुनगुनाते मचलते से सारंग है
और सम्बोधनो की डगर से कहे
आओ रंग दें तुम्हरे प्रीत के रंग में

चौक में सिल से बतियाते लोढ़े खनक
पिस रही पोस्त गिरियों की ठंडाइयाँ
आँगनों में घिरे स्वर चुहल से भरे
देवरों, नन्द भाभी की चिट्कारियाँ
मौसमी इस छुअन से न कोई बचा
जम्मू, केरल में, गुजरात में, बंग में
कह रही ब्रज में गुंजित हुई बाँसुरी
आओ रँग दें तुम्हें इश्क के रंग में

पनघटों पे खनकती हुई पैंजनी
उड़ती खेतों में चूनर बनी है धनक
ओढ़ सिन्दूर संध्या लजाती हुई
सुरमई रात में भर रही है चमक
मौसमी करवटें, मन के उल्लास अब
एक चलता है दूजे के पासंग में
भोर से रात तक के प्रहर सब कहें
आओ रँग दें तुम्हें इश्क के रंग में

### भुवन निस्तेज

राख उड़ती रही सुगबुगे रंग में
आप रंगते रहे मसअले रंग में
हाशिये भी अगरचे रँगे रंग में
रँग गए अब तो हर जाविये रंग में
रात भर ख्वाब आकर डराते रहे
और आई सुबह रतजगे रंग में
रंगसाजी करे खुद ब खुद फैसला
बस्ती फूलों की कैसे रँगे रंग में
आपके रंग में जाफरानी हवा
आपको सादगी क्या दिखे रंग में
पर्वतों से उफनती नदी ज़िन्दगी
गुनगुनाने लगी बावरे रंग में
आस्तीनों में ख़ंजर लबों पर हँसी
क्या हुई है वफ़ा आज के रंग में
बात ये खार से कौन कहता यहाँ
'आओ रंग दूँ तुम्हें इश्क के रंग में'
अब ये लहज़ा ग़ज़ल का बदलिए हुज़ूर
लाइए अब कहन को नए रंग में
ये नहर ने नदी से है पूछा 'सुनों
क्यों हमेशा से हो सरफिरे रंग में ?'
शायरी में दिखाओ असर फागुनी
हो गजल रंग में, काफ़िये रंग में।

### निर्मल सिद्धू

तुम भी रँग जाओगे फिर मेरे रंग में
आओ रंग दें तुम्हें इश्क़ के रंग में
चढ़ के उतरे नहीं इसमें है वो कशिश
डूब तो लो ज़रा इस नए रंग में
अब तो मौसम भी मदहोश होने लगा
क्यूँ न हम भी घुलें मदभरे रंग में
रंग भाता नहीं दूसरा कोई अब
जबसे देखा है तुझको हरे रंग में
साये ग़म के कभी पास आते नहीं
जब रहे हम सदा प्यार के रंग में
मैं अलग तू अलग ऐ खुदा कुछ बता
आदमी ढल रहा कौन से रंग में

### कृष्ण कुमार प्रजापति

देख लेना सुधार आएगा ढंग में
आओ रंग दे तुम्हें इश्क़ के रंग में
उसको छेड़ा तो वो बुत ख़फ़ा हो गया
किस तरह आ गई जान इक संग में
सीने छलनी हुए कट के सर गिर पड़े
कितने कम आ गए आन की जंग में
इससे पहले तो ऐसा नशा ही न था
क्या मिलाया है तूने मेरी भंग में
उँगलियाँ जल उठीं दिल सुलगने लगा
बिजलियों सी जलन है तेरे अंग में
अपनी साँसे मेरी सासों में घोल दे
देख जमना बहा करती है गंग में
सारा गुलशन उठाकर न दे तू 'कुमार '
डाल दे फूल कुछ दामन ए तंग में

### धर्मेन्द्र कुमार सिंह

एक दूजे को रँग दें नए रंग में
तुम गुलाबी रँगो हम हरे रंग में
आओ ऐसे मिलें एक दूजे से हम
रंग जैसे मिले दूसरे रंग में
गाल पर प्राइमर ये गुलाबी कहे
अब तो रंग दो पिया प्रीत के रंग में
रंग ये चढ़ गया तो न उतरेगा फिर
आओ रँग दें तुम्हें इश्क़ के रंग में
रंग फीके पड़ें जाति के धर्म के
ये ज़मीं खिल उठे प्रेम के रंग में
तितलियाँ भूल जाएँगी इसका पता

मत रँगो फूल को यूँ नए रंग में
एक झंडे में हँसते हैं भगवा, हरा
बात कुछ तो है इस तीसरे रंग में
सोचिए देश कैसा लगेगा, अगर
रँग दें सब को अगर एक से रंग में

### दिगम्बर नासवा

अपने मन मोहने साँवले रंग में
श्याम रँग दो हमें साँवरे रंग में
में ही अग्नि हूँ जल पृथ्वी वायु पवन
आत्मा है अजर सब मेरे रंग में
ओढ़ कर फिर बसंती सा चोला चलो
आज धरती को रँग दें नए रंग में
थर-थराते लबों पर सुलगती हँसी
आओ रँग दें तुम्हें इश्क के रंग में
आसमानी दुपट्टा छलकते नयन
सब ही मदहोश हैं मद भरे रंग में
रंग भगवे में रँगता हूँ दाढ़ी तेरी
तुम भी चोटी को रँग दो हरे रंग में
जाम दो अब के दे दो ज़हर साकिया
रँग चुके हैं यहाँ सब तेरे रंग में

### गुरप्रीत सिंह

कोई जादू तो था साँवले रंग में
राधिका रँग गई श्याम के रंग में
क्या धरा लाल पीले हरे रंग में
आओ रँग दें तुम्हें इश्क के रंग में
थी इनायत बड़ी धूप के रंग में
रंग दिखने लगे बूँद बेरंग में
कौन सा रंग तूने लगाया मूझे
दाग लेकिन पड़े कौन से रंग में
कैनवस पर न क्यों जी उठे जिंदगी
ब्रश चलाता है वो डूब के रंग में
चढ़ गया रंग जिन पे मुहब्बत का वो
जी गए रंग में मर गए रंग में
रंगे जाने के साथ अब महक भी उठूँ
थोड़ी खुशबू सनम घोल दे रंग में
भंवरे परवाने दोनों को न्यौता मिला
पर गया एक ही दावते रंग में
कत्ल जब भी हुआ है मेरे ख्वाब का
अश्क बहने लगे सुर्ख से रंग में

### नकुल गौतम

फ्रेम कर लें सजा कर लम्हे रंग में
खेलें होली चलो इक नए रंग में
हो गई है पुरानी मुहब्बत मगर
हैं ये किस्से नए के नए रंग में
धूप सेंकें पहाड़ों की मुद्दत के बाद
कर लें माज़ी नया धूप के रंग में
उस पहाड़ी पे कैफ़े खुला है नया
चल मुहब्बत पिएँ चाय के रंग में
एक भँवरे ने बोसा लिया फूल का
झूम उठी डालियाँ मद भरे रंग में
प्रिज़्म शरमा न जाए तुझे देख कर
रंग मुझको दिखें सब तेरे रंग में
जब से बूढ़ी हुई, हो गई तू खड़ूस
डेट पर ले चलूँ क्या तुझे रंग में
चल पकौड़े खिलाऊँ तुझे मॉल पर
औ' पुदीने की चटनी हरे रंग में
आज बच्चों ने ऐसे रँगा है मुझे
घोल कर हैं जवानी गए रंग में
हम गली पर टिकाए हुए थे नज़र
और बच्चे थे छत पर डटे रंग में
छोड़ बच्चे गए अपनी पिचकारियाँ
मेरा बचपन दिखाया मुझे रंग में
एक दिन के लिए छोड़ भी दो किचन
'आओ रँग दूँ तुम्हे इश्क़ के रंग में'

### द्विजेन्द्र द्विज

रंग सारे ही घुलमिल गए रंग में
लाल पीले हरे साँवले रंग में
मैं तेरे रंग में तू मेरे रंग में
चेहे भी रंग में आइने रंग में
सूफ़ी सन्तों के मनभावने रंग में
आओ रँग दें तुम्हें इश्क़ के रंग में
क्यों हो तन्हाइयों से सने रंग में
आओ रँग दें तुम्हें इश्क़ के रंग में
रंग ने रंग में रंग से बात की
रंग कितने ही और आ गए रङ्ग में
जानेजाँ क्यों है तू अनमने रंग में
आ भी जा आज तो मनचले रंग में
ये बुढ़ापे की चादर उतारो ज़रा
आके हमसे मिलो चुलबुले रंग में
साल भर की उदासी! ज़रा साँस ले
आज आने दे मुझको मेरे रंग में
एक सपना यकायक मुझे ले गया
उसकी ख़ुश्बू से महके हुए रंग में
मुँह छिपाएँ कहाँ आज मायूसियाँ
आज हैं दोस्तो ! क़हक़हे रंग में
पल छिनों में गुज़र जाएगी ज़िन्दगी
थे अभी कुछ यहाँ बुलबुले रंग में
कोई रंग और मुझ पर चढ़ा ही नहीं
यार ! जब से रँगा मैं तेरे रंग में
रंग दुनिया के हैं अब ख़लल की तरह
मेरी आँखों में आकर बसे रंग में
कोई मौक़ा नहीं आज तकरार का
आज हैं सबके सब फ़लसफ़े रंग में
क्या रहा ज़ायक़ा रंग के खेल का
खेलने सब लगे अटपटे रंग में
चढ़ गया रंग रिश्तों पे बाज़ार का
कुछ तो है खोट खिलते हुए रंग में
चन्द शे'र आपके हमने क्या सुन लिए
आप गाने लगे बेसुरे रंग में
कितने रंग उनके चेहरे पे आए, गए
'द्विज'! ये क्या कह दिया आपने रंग में

### डॉ. मधु भूषण शर्मा 'मधुर'

आओ रँग दें तुम्हें इश्क के रंग में
डूब जाएँ चलो एक से रंग में
है ये होली का दिन कुछ बुरा क्यूँ लगे
सारा आलम है जब सरफिरे रंग में
सुर्ख़ गालों की लाली लगी फैलने
जब सजनवा के हम आ गए रंग में
सात रंगों के सुर से सजा जब जहाँ
फिर सियासत है क्यूँ बेसुरे रंग में
जान पाना ये होता न आसाँ कभी
कौन डूबा यहाँ कौन से रंग में
दिख गया जब भी रंगे-लहू ठीक से
फिर ये दुनिया दिखेगी नए रंग में
छा ही जाता है सब पे अलग सा नशा
जब भी आती है महफ़िल मेरे रंग में

### गिरीश पंकज

लाल, पीले, हठीले हरे रंग में
मन हमारा रँगा आपके रंग में
प्यार बाँटें यहाँ प्यार मिलता रहे
ज़िन्दगी को जिएँ हम नए रंग में
फाग आया तो टूटे हैं बन्धन कई
तापसी भी दिखे मद भरे रंग में
रंग के बिन यहाँ ज़िन्दगी कुछ नहीं
देखिए लग रहे कहकहे रंग में
रंग है इक नदी डूबते सब रहे
गोरे, काले हों या साँवले रंग में
रंग का संग जिनको मिला साथियो
शान से वो जिए फिर मरे रंग में
यूँ न बचते फिरो आज मौका मिला
'आओ रंग दें तुम्हें इश्क के रंग में'
हमने दिल से कहे शेर अपने सभी
हम नहीं बोलते भंग के रंग में
आओ 'पंकज' उतारो ये चोला जरा
तुम हो कैसे अरे अनमने रंग में

## अंशुल तिवारी

अब के फागुन है कुछ मनचले रंग में,
आओ रंग दें तुम्हे इश्क़ के रंग में।
लाल, पीले, ग़ुलाबी पुराने हुए,
आज हम भीग जाएँ, नए रंग में।
फ़ाग का है असर, हर बशर पर यहाँ,
घूमते हैं सभी जो, बड़े रंग में।
कोई सूरज नया आसमाँ में उगा,
धूप भी आई है कुछ खिले रंग में।
बात तुमसे जो कहनी थी, कह तो गए,
पर कही हमने कुछ, अटपटे रंग में।
भाँग का भी असर मुझ पे कुछ ना हुआ,
देखा तूने यूँ कुछ मदभरे रंग में।
ढूँढ़ते हम रहे, रंग जीवन में पर,
रंग सारे मिले, प्रीत के रंग में।
जब से उल्फ़त हुई, हमने तबसे सुनो,
अपने दिल को रँगा बस तेरे रंग में।
मेरा जो भी था, सब-कुछ तेरा हो गया,
तुम भी रँग जाओ ना, अब मेरे रँग में।
एक-दूजे से मिलकर यूँ घुल जाएँ अब,
श्याम-राधा थे जैसे घुले रंग में।

## पवन कुमार

हुस्न को देख लें इश्क़ के रँग में
आओ रंग दें तुम्हें इश्क़ के रँग में
एक धनक सी बिखरती रहे आस पास
शेर कहते रहें इश्क़ के रँग में
दिल के अंदर थीं दुनिया की बेचैनियाँ
मिल गईं राहतें इश्क़ के रँग में
बेक़रारी, जुनूँ और दीवानगी
बेख़ुदी, वहशतें इश्क़ के रँग में
पानियों पर नया रँग चढ़ता हुआ
भीगती बारिशें इश्क़ के रँग में
कोई करवट बदलता रहा रात भर
पड़ गईं सिलवटें इश्क़ के रँग में
दिल को पागल बनाए सदा मोर की
कूकती कोयलें इश्क़ के रँग में
सबको पैग़ाम चाहत का देते रहें
सारी दुनिया रंगें इश्क़ के रँग में

## नीरज गोस्वामी

झुर्रियाँ क्या छुपीं फाग के रंग में
हम जवाँ-से ठुमकने लगे रंग में
इन गुलालों से होली बहुत मन चुकी
आओ रँग दें तुम्हें इश्क के रंग में
तल्खियाँ हों नदारद अगर खुश रहें
तू तेरे रंग में, मैं मेरे रंग में
बात कुछ तो फ़िज़ाओं में फागुन की है
हर कोई लग रहा है मुझे रंग में
कोई चाहत कभी कोई कोशिश न की
जो मिला हम उसी के रँगे रंग में
उन सियारों के सिक्के चले तब तलक
जब तलक रह सके वो छुपे रंग में
बिन तेरे रंग में रंग ''नीरज'' न था
यूँ रँगा था सभी ने मुझे रंग में

## तिलक राज कपूर

इस तरफ़ बदनसीबी खिले रंग में
उस तरफ़ खुशनसीबी दबे रंग में
नोटबुक के सभी वर्क़ कोरे थे पर
देखिए खिंच गए हाशिये रंग में
आप कोरे हैं दिल के सुना था मगर
आपने भी लिखे फ़ैसले रंग में
श्वेत भी है मगर देखते वो नहीं
ग़ुम सियासत हरे गेरुए रंग में
सुब्ह लाएँगे कैसे नई वो कहो
जिनकी खुशियाँ हैं अँधियार के रंग में
ज़ेह्न में रात भर प्रश्न उठते रहे
कुछ के उत्तर दिखे अनसुने रंग में
ज़िन्दगी से शिकायत बहुत हो चुकी
देखिए हर नया पल नए रंग में
देख अत्फ़ाल की मस्तियों को कभी
खेलते धूप में, धूल के रंग में
अर्थ दीवानगी का समझ जाओगे
''आओ रंग दें तुम्हें इश्क के रंग में''

## अनिता 'तहज़ीब'

आई होली सभी रँग गए रंग में
हैं मुलाकातों के सिलसिले रंग में
सुब्ह आई सँवर सुनहरे रंग में
शाम घुलने लगी साँवरे रंग में
रंग अपना ज़रा घोल दे रंग में
देखूँ कैसी लगूँ मैं तेरे रंग में
रंग उतरे न ताउम्र इसका कभी
'आओ रँग दें तुम्हें इश्क़ के रंग में'
द्वार आँगन हँसी कहकहे गूँजते
रँग गया फ़ाग भी मसखरे रंग में
रंग ही रंग आएँ नज़र हर तरफ़
रँग गई ज़ीस्त उम्मीद के रंग में
कोई जादू ही आता है शायद तुझे
अब मेरे रतजगे हैं तेरे रंग में
चाँदनी छा गई हर गली बाम पर
चाँद भीगा हुआ प्रीत के रंग में
लाल पीला हरा जामुनी चम्पई
भर गई हैं बहारें नए रंग में
एक झोंका हवा का मिला पत्तों से
छाँव सजने लगी धूप के रंग म

## शेख़ चिल्ली

लोग सब कंस होने लगे रंग में
खेलें होली कहाँ कृष्ण के रंग में
आज मथुरा भी बिज़नस का गढ़ हो चला
राजनीति बनारस करे रंग में
तोड़ कर मटकियों से चुराएँगे क्या
दूध-घी यूरिया के बुरे रंग में
घोर कलयुग है आया, कसम राम जी
कैसे कैसे रसायन घुले रंग में
बाँसुरी भी पुरानी हुई अब तेरी
राधिका भी तो डी. जे. सुने रंग में
कृष्ण बोले सुदामा से घबराओ मत
जो भी है सब रँगा है मेरे रंग में
आओ अब इक गिरह भी लगा लें ज़रा
'आओ रँग दूँ तुम्हे इश्क़ के रंग में'
शेख़ चिल्ली ये बातें बुरी हैं मगर
क्या हकीकत नहीं है मेरे रंग में?

## सौरभ पाण्डेय

दिख रहे थे अभी तक उड़े रंग में
सुर लगा फाग का.. आ गए रंग में
गुदगुदाने लगी फुसफुसाहट, उधर
मौसमों के हुए चुटकुले रंग में
ताकि मुग्धा हुई तुम पुलकती रहो
आओ रँग दें तुम्हें इश्क़ के रंग में
वो न आएगा दर पे हमें है पता
अल्पना हम सजाते रहे रंग में
खेत किसको सुने किसको आगोश दे
फावड़े और फंदे दिखे रंग में
मुट्ठियाँ भिंच गईं, दिल दहकने लगा
इस तरह गाँव के दल दिखे रंग में
फिर यही सोच कर थम गईं सिसकियाँ
या खुदा, फिर खलल मत पड़े रंग में

## पारुल सिंह

शाम ढलने लगी लाल-से रंग में
जैसे आँचल किसी का उड़े रंग में
मैं ग़ज़ल घोल लाई सजन चाँद में
आओ रँग दूँ तुम्हें इश्क़ के रंग में
चाँद ने बाहों में भर के पूछा मुझे
शर्म से गाल क्यूँ रँग गए रंग में
फागुनी रात ने चाँद से ये कहा

और मस्ती मिला, बावरे, रंग में
झम झमा झम झमकती फिरे ज़िंदगी
हो गई है धनक आपके रंग में
हैं ज़रा सा ख़फ़ा अब मना लो हमें
ये मिलन फिर सजे इक नए रंग में
शर्त है बात हक़ की ज़ुबाँ पर न हो
ढल गई है वफ़ा कौन से रंग में
दिल मिले साथ दिल के गले से लगा
केसरी घुल गया है हरे रंग में
बस गए धूप बन के नज़र में पिया
वस्ल ही वस्ल है अब खिले रंग में

### मुस्तफ़ा माहिर

ऐसे जीना भी क्या बेसुरे रंग में
आओ रंग दें तुम्हें इश्क़ के रंग में
रंग असली तेरा कौन सा है बता
हर दफ़ा तू दिखे है नऐ रँग में
प्यार गहराया ऐसा कि दिखने लगा
तू मेरे रंग में मैं तेरे रंग में
तुझपे फबती हैं तेरी जफ़ाएँ फ़क़त
तू लगे है बुरा दूसरे रंग में
ज़िन्दगी सबकी बेरंग तस्वीर है
जो रँगी जाए अच्छे बुरे रंग में
पूछते हो तो कह दूँ जचे है बहुत
तुमपे पटियाला वो भी हरे रंग में

### अश्विनी रमेश

चाँद तारों भरी महफिले रंग नें
''आओ रंग दें तुम्हें इश्क के रंग में''
मद भरा ये समाँ नाचे झूमे यहाँ
रम गए हम यहाँ यों नए रंग में
रंग में रँग गए हम किसी के यहाँ
खो गए अब नयन मदभरे रंग में
होली आई रे आई रे होली ए हो
रँग के इक दूजे को नाचो रे रंग में
छेड़ दो रागिनी प्रेम की आज तो
खो सके सुरमई बावरे रंग में
दौलते हुस्न के रंग तो कम चढ़े
रँग गए हम मगर साँवले रंग में
माफ़ करना हमें हो गए मस्त हम
रँग गए इस कदर हम तिरे रंग में

### मन्सूर अली हाश्मी

आज फिर आ गए हैं गधे रंग में
भाँग पी चल रहे हैं रँगे रंग में
मार दें न दुलत्ती कि बचिए ज़रा
हैं गधे आज कुछ चुलबुले रंग में
बच के रहना सखी आज होरी के दिन
रोड पर फिर रहे हैं गधे रंग में
ए-ए करते हुए शब्द के सिर चढ़े
कैसे-कैसे मिले काफिये रंग में
वोट के बदले मिलते यहाँ नोट हैं
अब गुलाबी, थे पहले हरे रंग में
शब्द में, अर्थ में, गीत में, छन्द में
आओ रँग दें तुम्हें इश्क़ के रंग में
प्रीत में, रीत में, सुर में, संगीत में
गुन गुनाऊँ तुम्हें हर नए रंग में
'हाश्मी' केसरी तो कन्हैया हरा
मित्रता से बने हैं सगे रंग में

### डॉ. सुधीर त्यागी

क्या मिला तुमको नफ़रत भरे रंग में
आओ रँग दे तुम्हे इश्क के रंग में
ऐसी बस्ती बसे काश कोई, जहाँ
आदमी प्रेम के बस रँगे रंग में
अब नहीं हैं अमन के कबूतर यहाँ
सब रँगे केसरी या हरे रंग में
प्यार, मनुहार, तकरार सब हैं रखे
क्या पता तुम मिलो कौनसे रंग में
अब बचे कौन कातिल नज़र से यहाँ
घुल गई भंग जब हुस्न के रंग में

### पंकज सुबीर

जिसको देखो वही है तेरे रंग में
कुछ तो है इस तेरे साँवले रंग में
इक दुपट्टा है बरसों से लहरा रहा
सारी यादें रँगी हैं हरे रंग में
दिल की अर्ज़ी पे भी ग़ौर फ़रमाइये
कह रहा है रँगो भी मेरे रंग में
रंग डाला था होली पे उसने कभी
आज तक हम हैं भीगे हुए रंग में
बस इसी डर से बोसे नहीं ले सके
दाग़ पड़ जाएँगे चाँद-से रंग में
तुम भी रँगरेज़ी देखो हमारी ज़रा
'आओ रँग दें तुम्हें इश्क़ के रंग में'
जिस्म से रूह तक रंग चढ़ जाएगा
थोड़ा गहरे तो कुछ डूबिये रंग में
थक गया है सफ़ेदी को ढोते हुए
अब रँगो चाँद को दूसरे रंग में
आज रोको लबों की न आवारगी
बाद मुद्दत के आए हैं ये रंग में
ख़ूब बचते रहे रंग से अब तलक
सोलहवाँ जब लगा, आ गिरे रंग में
हम दिवानों की होली तो बस यूँ मनी
उनको देखा किए भीगते रंग में
इक दिवाना कहीं रोज़ बढ़ जाएगा
रोज़ निकलोगे गर यूँ नए रंग में
दिल को मासूम बच्चा न समझो, सुनो
तुमने देखा कहाँ है इसे रंग में
दोस्ती का जो करते थे दावा बहुत
एक सच जो कहा, आ गए रंग में
रिंद प्यासे हैं तब तक ही ख़ामोश हैं
थोड़ी मिल जाए तो आएँगे रंग में
उसके रँग में रँगे लौट आए हैं घर
घर से निकले थे रँगने उसे रंग में
उफ़ लबों की ये सुर्ख़ी, ये काजल ग़ज़ब
आज रँगने चले हो किसे रंग में
शर्म से जो लरजते थे दिन में वही
रात को अपने असली दिखे रंग में
मन में कोंपल-सी फूटी प्रथम प्रेम की
कच्चे-कच्चे सुआपंखिये रंग में
वस्ल की शब बरसती रही चाँदनी
हम नहाते रहे दूधिये रंग में
तब समझना कि तुमको मुहब्बत हुई
मन जो रँगने लगे जोगिए रंग में
ज़ाफ़रान एक चुटकी है शायद मिली
इस तेरे चाँदनी से धुले रंग में
ज़िंदगी ने थी पहनाई वर्दी हरी
मौत ने रँग दिया गेरुए रंग में
आसमाँ, फूल, तितली, धनक, चाँदनी
है हर इक शै रँगी आपके रंग में
फिर कोई दूसरा रंग भाया नहीं
उम्र भर हम उसीके रहे रंग में
वस्ल की रात उसका वो कहना ये, उफ़
'आज रंग डालो अपने मुझे रंग में'
हैं कभी वो ख़फ़ा, तो कभी मेहरबाँ
हमने देखा नहीं तीसरे रंग में
आपका वक़्त है, कौन रोके भला
आप रँग डालें चाहे जिसे रंग में
कल की शब हाय महफ़िल में हम ही न थे
सुन रहे हैं के कल आप थे रंग में
रूह पर वस्ल का रँग चढ़े, हाँ मगर
जिस्म भी धीरे-धीरे घुले रंग में
है 'सुबीर' उम्र का भी तक़ाज़ा यही
ख़ुश्बु-ए-इश्क़ भी अब मिले रंग में

❐❐❐

(यह विशेष तरही मुशायरा ब्लॉग http://subeerin.blogspot.in पर होली के अवसर पर आयोजित किया गया था। बहरे मुतदारिक मुसमन सालिम पर यह सारी ग़ज़लें कही गईं। )

# शिवना प्रकाशन : नए सेट की पुस्तकें

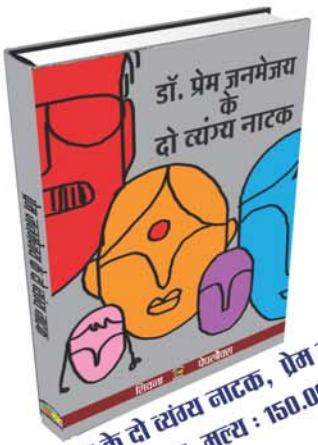


डॉ. प्रेम जनमेजय के दो व्यंग्य नाटक, प्रेम जनमेजय
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 150.00 रुपये

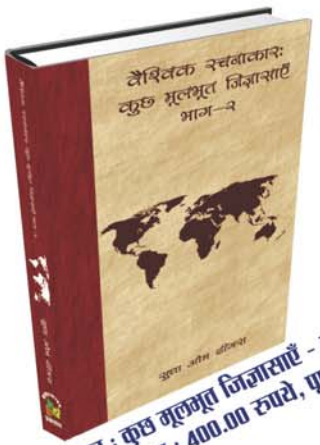


वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ - भाग 2
सुधा ओम ढींगरा, मूल्य : 400.00 रुपये, पृष्ठ : 280

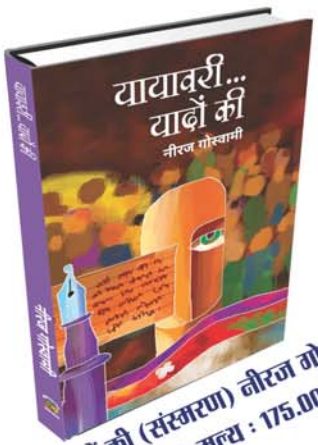


यायावरी... यादों की (संस्मरण) नीरज गोस्वामी
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 175.00 रुपये

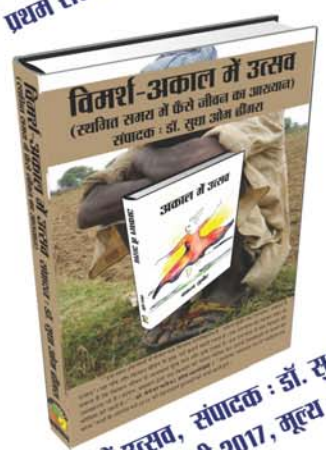


विमर्श-अकाल में उत्सव, संपादक : डॉ. सुधा ओम ढींगरा
प्रथम संस्करण : जनवरी 2017, मूल्य : 250.00 रुपये

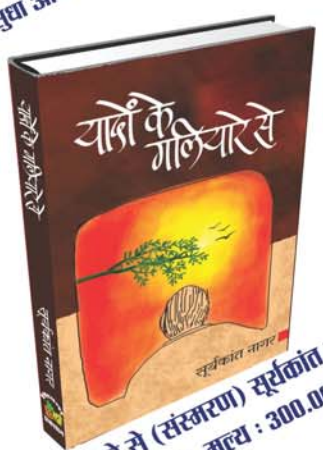


यादों के गलियारे से (संस्मरण) सूर्यकांत नागर
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 300.00 रुपये

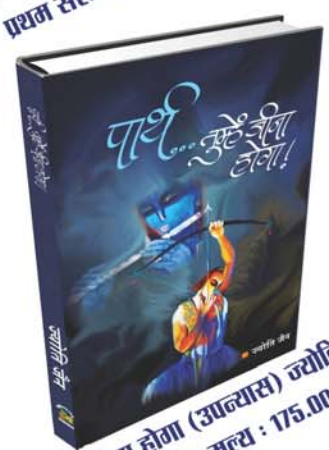


पार्थ...! तुम्हें जीना होगा (उपन्यास) ज्योति जैन
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 175.00 रुपये

स्मृतियों में रमते हुए (समग्र) डॉ. श्रीमती कमल चतुर्वेदी
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 250.00 रुपये

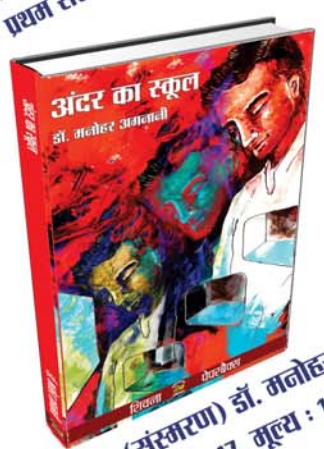


अंदर का स्कूल (संस्मरण) डॉ. मनोहर अगनानी
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 150 रुपये

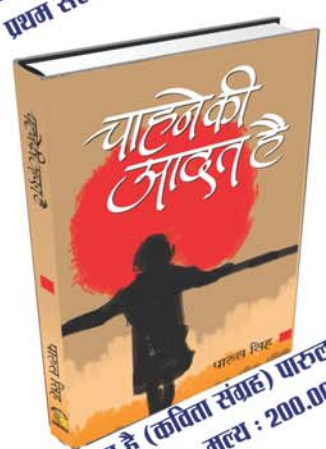


चाहने की आदत है (कविता संग्रह) पारुल सिंह
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 200.00 रुपये

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Shivna Sahityiki • Quarterly • April-June 2017 • RNI : MPHIN/2016/67929 • ISSN : 2455-9717


मुख्यमंत्री से जुड़ने का उनसे **सीधे संवाद** बनाने का
एक और **सशक्त डिजिटल माध्यम**

# शिवराज सिंह चौहान

## एप्प

Google Play
से डाउनलोड करें

जल्द ही...
आइओएस पर भी उपलब्ध

**Follow Chief Minister Shivraj Singh Chouhan**

/ChouhanShivraj /ChouhanShivraj /ChouhanShivrajSingh

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2017

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी



**If Undelivered Please Return to :**
**P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001**
**Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184**


स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।